शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 15 अंक : 6 1 जनवरी 2023

पौष-माघ मास, विक्रम संवत् 2079

संस्थापक
स्व. मुकुन्दराव कुलकर्णी

❖

परामर्श
के.नरहरि
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
जगदीश प्रसाद सिंघल
शिवानन्द सिन्दनकेरा
जी. लक्ष्मण

❖

सम्पादक
डॉ. राजेन्द्र शर्मा

❖

सह सम्पादक
डॉ. शिवशरण कौशिक
भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल
प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय
डॉ. ओमप्रकाश पारीक
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. दीनदयाल गुप्ता

❖

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

❖

प्रेषण प्रभारी : **नौरंग सहाय 'भारतीय'**

❖

कार्यालय प्रभारी : **आलोक चतुर्वेदी**

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राजस्थान) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष : 8920959986

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

वार्षिक शुल्क ₹ 250/-
दस वर्षीय शुल्क ₹ 2000/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

अनुक्रम

3.	सम्पादकीय	- डॉ. राजेन्द्र शर्मा
4.	आजादी का अमृत महोत्सव और भारतीय ...	- डॉ. अंजनी कुमार श्रीवास्तव
7.	भारतीय चिंतन परम्परा में धारणक्षम विकास	- डॉ. सुमन बाला
12.	स्वराज 75 और राष्ट्रीय शिक्षा नीति की विकास यात्रा	- डॉ. रेखा यादव
15.	भारतीय भाषा, साहित्य और कलाएँ	- प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल
20.	भारतीय कला, साहित्य की इतिहास-परम्परा	- प्रो. सुधीर प्रताप सिंह
24.	आधुनिक भारत और तकनीक	- डॉ. सत्यप्रकाश पाल
26.	भारतीय कला, संगीत, भाषा और साहित्य	- प्रो. प्रकाश चन्द्र अग्रवाल
32.	स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव और भारत पुनर्निर्माण	- डॉ. मनीष कुमार
34.	प्राचीन भारतीय चौंसठ कलाएँ	- डॉ. धनंजय कुमार मिश्र
38.	'भारत निर्माण कार्यक्रम' और नया भारत	- डॉ. संतोष नांदल
40.	भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार कृषि	- माधव पटेल
43.	भगवद्गीता एवं आधुनिक जीवन में तनाव प्रबंधन	- प्रो. सरोज व्यास
45.	नया भारत, समर्थ भारत, समृद्ध भारत	- डॉ. सुनील राय पोरवाल
47.	स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव और भारत पुनर्निर्माण	- डॉ. प्रीति सोनी
50.	भारतीय संस्कृति और साहित्य में कला तत्त्व	- डॉ. पुरुषोत्तम पाटील
54.	भारोपीय भाषा परिवार और शोध प्रविधियाँ	- डॉ. जसपाल सिंह वरवाल
57.	भारतीय कला और साहित्य के विविध आयाम	- डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव
59.	विभाजन की त्रासदी और हिंदी साहित्य	- डॉ. जयसिंह यादव
63.	स्वराज 75 और राष्ट्रीय शिक्षा नीति	- विवेकानन्द उपाध्याय
65.	भारत पुनर्निर्माण का अनूठा संकल्प : स्वतन्त्रता...	- डॉ. रेनू त्रिपाठी
67.	नया भारत, समर्थ और समृद्ध भारत	- प्रो. दर्शन पांडेय
69.	भारत की कला संरचनाओं में धर्म	- प्रो. आलोक कुमार चक्रवाल
71.	Bharat Nirman : Concept and Challenges	- Dr.T.S. Girishkumar
74.	Decolonization of India : A Perspective....	- Dr. Sindhu Poudyal
77.	NEP : In Achieving Aims of Swaraj @ 75	- Ramakrishna Rao
80.	स्वराज 75 : शिक्षा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020...	- प्रो. राजीव सक्सैना

हाँ वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है।
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है।
भगवान की भवभूतियों का यह प्रथम भंडार है।
विधि ने किया नरसृष्टि का पहले यहीं विस्तार है।

(राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त/भारत-भारती काव्य)

संपादकीय

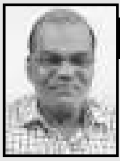

डॉ. राजेन्द्र शर्मा

सम्पादक

यह व्यापक तथा सर्वग्राही सत्य है कि भारत एक सांस्कृतिक विविधता या बहुसांस्कृतिकता वाला देश है। यह भी शाश्वत सत्य है कि भारत इन सांस्कृतिक विविधताओं की सक्रिय उपस्थिति के रहते हुए भी राष्ट्रीयता की भावानुभूति में अखंड और एक है। कहा जा सकता है कि भारत का प्रत्येक नागरिक स्त्री, पुरुष, अवर्ण, सवर्ण, हिंदू, मुसलमान, बंगाली, राजस्थानी, उत्तराखंडी, झारखंडी, तमिलभाषी, ब्रजभाषी आदि पहचानों के साथ भी भारतीय है। हम सभी अपनी गली, मोहल्ले, शहर, प्रांत के निवासी होने के साथ ही समग्रता में भारत के निवासी हैं। विगत कुछ दशकों में भारत की एकता की इस भावना को वैचारिक दृष्टि से कई आघात सहने पड़े हैं क्योंकि कुछ तथाकथित बुद्धिजीवी जाति, धर्म, क्षेत्र, प्रदेश, भाषा, लघु-संस्कृति तथा सामाजिक मान्यताओं को परस्पर विरोधी बताकर देशवासियों में वैमनस्य उत्पन्न करने का प्रयास करते रहे हैं। पश्चिम की विचार पद्धति से निःसृत इन अस्मितामूलक विचारधाराओं के उत्थान के पीछे भारत को कमजोर किए जाने का षड्यंत्र बराबर चलाया जाता रहा है जो कुछ दिन पहले तक बहुत अधिक मुखर रहा। यह भी सत्य है कि आज इस प्रकार की खंडित विचार पद्धतियों का धीरे-धीरे पर्दाफाश होना शुरू हुआ है। आज भारत की देश के आंतरिक वातावरण तथा वैश्विक मंच पर प्रभावशाली उपस्थिति ने इस प्रकार के षड्यंत्रों पर अंकुश लगाना तो प्रारंभ किया है, परंतु फिर भी इस तरह का खंडित तथा अलगाववादी विचार भारत के नागरिकों, सैनिकों, किसानों, कामगारों के मन को क्षुब्ध तो करता ही है, उनमें निराशाबोध भी उत्पन्न करता है।

आज हम स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव मना रहे हैं जो वर्तमान भारत के उभरते स्वत्व और सामर्थ्य को प्रकट तो करता ही है, साथ ही भारत को राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक क्षेत्र में विश्व की उभरती हुई महाशक्ति के रूप में भी स्थापित करता है। इन सभी क्षेत्रों में भारत के स्वराज का स्वरूप बदल रहा है और नए भारत के निर्माण की साकार होती कल्पना हमारे सामने विस्तार पा रही है।

आज भारत का पुनर्निर्माण इसलिए भी आवश्यक हो जाता है कि देश में लागू की गई पूर्व की शिक्षा नीतियों, अर्थ नीतियों और राजनीति के व्यावहारिक पक्ष ने हमारे देश में अपेक्षित ऊर्जा और सफलता का संचार नहीं किया और हम निरंतर स्वतंत्र भारत में औपनिवेशिक मानसिकता से ग्रस्त रहे। कहीं न कहीं शिक्षा के माध्यम की भाषा, हमारे स्थानीय उत्पाद, स्थानीय कृषि, स्थानीय चिकित्सा, स्थानीय उद्योग, स्थानीय ज्ञान-विज्ञान, स्थानीय व्यवसाय विस्थापित होते गए।

आज नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की क्रियान्विती के आरंभिक चरण में प्रधानमंत्री की पहल पर 8 राज्यों के 14 इंजीनियरिंग कॉलेज में पाँच भारतीय भाषाओं - हिंदी, तमिल, तेलुगू, मराठी तथा बंग्ला में अध्ययन-अध्यापन आरंभ होने जा रहा है जो अब तक केवल अंग्रेजी माध्यम में ही पढ़ाते थे। आज के भारत की विकास यात्रा अपने ही देश में विश्वस्तरीय सुविधाओं के निर्माण के साथ संपूर्णता में आत्मनिर्भर भारत के निर्माण की यात्रा है। हर भारतीय की यही कल्पना है कि भारत आयुष्मान हो, भारत उज्जवल हो, भारत एक हो तथा भारत श्रेष्ठ हो! इस सब के लिए भारत की प्राचीनतम समृद्ध ज्ञान-परंपरा के साथ अधुनातन तकनीक के सम्मिश्रण और सुसंगत उपयोग की महती आवश्यकता है। साथ ही इस भविष्यगामी योजना में शिक्षकों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यह एक प्रकार की जनभागीदारी है जो शिक्षक-शिक्षार्थी-समाज की त्रिवर्गीय शक्ति के सामूहिक प्रयत्नों से भारत का पुनर्निर्माण करेगी। इसी कामना के साथ जनवरी का अंक आपके सम्मुख सादर प्रस्तुत है। ❑

आजादी का अमृत महोत्सव और भारतीय इतिहास का पुनर्लेखन

डॉ. अंजनी कुमार श्रीवास्तव

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय,
मोतिहारी (बिहार)

'स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव' स्वाधीनता संग्राम की चेतना से वर्तमान पीढ़ी और समाज को अनुप्राणित करने, इतिहास का पुनर्लेखन करने तथा स्वाधीनता संग्राम के सम्बन्ध में प्रचलित सहजबोध को परिवर्तित करने का भारत सरकार का एक महत् प्रयास है। 12 मार्च को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने महात्मा गाँधी की दांडी यात्रा की वर्षगाँठ के अवसर पर 75 सप्ताह तक चलने वाले इस महोत्सव का उद्घाटन किया। अपने वक्तव्य में उन्होंने अलक्षित और विस्मृत स्वाधीनता सेनानियों, अलक्षित आन्दोलनों और उपेक्षित राष्ट्रनायकों की चर्चा की। उन्होंने बहुत ही पीड़ा के साथ श्यामजी कृष्ण वर्मा की उपेक्षा का स्मरण किया, किन्तु अत्यंत गर्व के साथ वर्तमान भारत की संकल्प शक्ति, जिजीविषा और आत्मनिर्भरता का उल्लेख किया। यह अनायास नहीं था। इसके पूर्व उन्होंने आजाद हिन्द फौज सरकार के राष्ट्राध्यक्ष के रूप में नेताजी सुभाष चंद्र बोस द्वारा स्वतंत्र भारत भूमि पर प्रथम तिरंगा फहराने की वर्षगाँठ के अवसर पर 30 दिसम्बर 2018 को अंडमान तथा निकोबार द्वीप में 150 फुट ऊँचा तिरंगा फहराकर इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण संदेश दिया था। इस अवसर पर उन्होंने सुभाष चंद्र बोस के योगदान को रेखांकित करते हुए रॉस द्वीप का नामकरण 'नेताजी सुभाष चन्द्र बोस' द्वीप किया था। यही नहीं उन्होंने नेताजी द्वारा अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह को दिए गए नाम 'शहीद एवं स्वराज द्वीप समूह' की विरासत से संयुक्त करते हुए दो महत्त्वपूर्ण द्वीपों का शहीद (नील) एवं स्वराज (हैवलाक) नामकरण भी किया था। वस्तुतः ये कार्य बहुत पहले हो जाने चाहिए थे। नायकत्व को उचित सम्मान तथा अलक्षित नायकत्व को लक्षित करने के प्रयास किये जाने थे। स्वतंत्रता के बाद एक समग्र इतिहास लेखन की आवश्यकता थी, किन्तु इसके स्थान पर कांग्रेस केन्द्रित इतिहास लिखा गया। स्वतंत्रता के इस कांग्रेस केन्द्रित महावृत्तांत की निर्मिति में बहुत कुछ छूट गया; अलक्षित और उपेक्षित रह गये– नायकत्व भी, आन्दोलन भी, स्थान भी और वैचारिकी भी। स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव भारतीय स्वाधीनता संग्राम को समग्रता में देखने और उस विरासत से स्वयं को संयुक्त करने का एक महा अभियान भी है और अपने अलक्षित, विस्मृत तथा उपेक्षित राष्ट्रनायकों के प्रति कृतज्ञता भी।

इतिहास लेखन के क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इतिहास के स्रोत, उसकी धारणा आदि में भी परिवर्तन हुए हैं। इन सबको ध्यान में रखते हुए स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव स्थानीय स्तर से लेकर राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर तक एक वृहत्तर नायकत्व का विमर्श निर्मित करने का प्रयास है। इसमें उच्च अध्ययन संस्थानों की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी। उच्च अध्ययन संस्थानों ने इस दिशा में प्रयास भी आरम्भ कर दिया है। सर्वप्रथम 12 मार्च को ही महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी (बिहार) ने एक दिन में दो–दो बड़े आयोजन कर उच्च शिक्षा संस्थानों

की दिशा का संकेत कर दिया था। बाद में अन्य शैक्षणिक संस्थानों ने भी इस दिशा में प्रयास किये। कोरोना महामारी की विभीषिका से इस दिशा में कुछ अवरोध भी हुए, किन्तु शैक्षणिक संस्थान इस वृहत् परियोजना को सार्थक दिशा में ले जाएँगे और अपनी बड़ी भूमिका का निर्वहन करेंगे इसमें कोई संदेह नहीं है। 2023 में जब स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव की पूर्णाहुति होगी तब तक राष्ट्र के उच्च अध्ययन संस्थानों द्वारा एक समग्र और सम्यक् इतिहास की अट्टालिका निर्मित हो चुकी होगी।

स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास को प्रायः महानायकों के वृत्त के आस-पास घूमता दिखाया गया है और राष्ट्र के अविछिन्न अतीत के बजाय लगभग 200 वर्षों के संघर्ष तक ही सीमित रखने का प्रयास अधिकतर हुआ है। इस प्रक्रिया में स्थानीय और क्षेत्रीय नायकों के संघर्ष और बलिदान या तो उपेक्षित रहे हैं या अलक्षित। इसके साथ ही राष्ट्र के समृद्ध अतीत और सांस्कृतिक परम्परा से स्वतन्त्रता आन्दोलन बिल्कुल अलग-थलग प्रतीत होने लगता है। स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव इतिहास लेखन की इस परम्परा को परिवर्तित करने के अभियान को लेकर चलता है। श्री नरेंद्र मोदी ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट किया कि भगवान श्रीराम के युग में 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपिगरीयसी' की जो भावना थी उसी भावना का विकास स्वाधीनता आन्दोलन में हुआ है और भक्ति आन्दोलन इस स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि थी। इस प्रकार एक सांस्कृतिक और अविच्छिन्न इतिहास की परम्परा में स्वतन्त्रता आन्दोलन को देखने का प्रस्ताव अमृत महोत्सव करता है।

इतिहास के कई नायक आज विस्मृति के गर्त में हैं। चम्पारण के सत्याग्रह पर बात करते हुए महात्मा गाँधी और राजकुमार शुक्ल की चर्चा की जाती है, किन्तु नील क्रान्ति के अन्य नायकों को याद नहीं किया जाता। जसौली पट्टी (कोटवा) के लोमराज सिंह, बारागोविंद (चकिया) के जनकधारी देव, लौरिया के शेख गुलाब और मठिया के शीतल राय जिनका इस सत्याग्रह में महत्त्वपूर्ण योगदान था और जो गाँधीजी के आगमन के पूर्व ही नील कोठी के अत्याचार से लड़ रहे थे उनका इतिहास में कोई जिक्र नहीं है। लोमराज सिंह ने गांधीजी के आगमन के पूर्व ही लगभग 700 लोगों के अंगूठे के निशान सहित आवेदन तिरहुत के कमिश्नर को नील कोठी के अत्याचार से सम्बद्ध सौंपे थे। बावजूद इसके इनके योगदान से हम अपरिचित हैं। क्रांतिकारी आन्दोलन के सम्बन्ध में इस प्रकार की विस्मृति और अधिक दिखाई पड़ती है। काकोरी काण्ड के बाद चन्द्रशेखर आजाद और भगत सिंह गुप्त रूप से बेतिया में रहे। यहाँ एक क्रांतिकारी गतिविधि में सम्मिलित होने के कारण उनके सहयोगी कमलनाथ तिवारी, गुलाली जी और केदारमणि शुक्ल को कालापानी की सजा हुई। लेकिन, इतिहास के पन्ने से यह अध्याय गायब है। चम्पारण महज उदाहरण है, इस इतिहास लेखन में पूरे देश भर के नायकों की उपेक्षा हुई है।

नायकों की उपेक्षा के साथ ही कुछ संगठनों के महत्त्व का भी उचित आकलन अब तक नहीं हो सका है। इनमें आजाद हिन्द फौज सर्वाधिक उपेक्षित रहा है। आजाद हिन्द फौज जिसने मणिपुर और कोहिमा में विजय प्राप्त की; अंडमान तथा निकोबार द्वीप में शासन किया; स्वतंत्र डाक टिकट, स्वतंत्र मुद्रा और स्वतंत्र रेडियो स्टेशन चलाये उसके 2300 बंदी सैनिकों को 25 सितम्बर 1945 को बंगाल के नीलगंज में ब्रिटिश फौज ने गोली से उड़ा दिया, पर इसकी कोई चर्चा नहीं हुई। सुभाषचन्द्र की मृत्यु (?) के बाद भी आजाद हिन्द फौज की स्वाधीनता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। 1946 के नौ सैनिक विद्रोह जिसने भारत की स्वतंत्रता को तत्काल सम्भव किया, इसमें आजाद हिन्द फौज की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही, किन्तु उसकी उपेक्षा हुई। स्वतन्त्रता के बाद भी इन्हें भारतीय सेना में जगह नहीं दी गयी। विपनचन्द्र ने अपनी पुस्तक 'भारत का स्वतन्त्रता संग्राम' में आजाद हिन्द फौज को महज सवा पेज में समेट दिया है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और हिन्दू महासभा के स्वतन्त्रता संग्राम में योगदान की तो सर्वथा उपेक्षा हुई। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रथम सर संघचालक डॉ. हेडगेवार बंगाल के क्रांतिकारी आन्दोलन में विद्यार्थी जीवन में सक्रिय रहे। बाद में वे कांग्रेस में आये और महाराष्ट्र में असहयोग आन्दोलन का नेतृत्व किया। इसके फलस्वरूप उन्हें एक वर्ष का सश्रम कारावास दिया गया और 19 अगस्त 1921 को नागपुर के अजनी

जेल में लाया गया। पुन: मध्यप्रांत के सत्याग्रह के दौरान डॉ. हेडगेवार सहित 125 स्वयंसेवक अकोला जेल में बंदी बनाये गए। संघ क्रांतिकारी आन्दोलन और अहिंसक आन्दोलन की कड़ी के रूप में महत्त्वपूर्ण रहा। 1929 में सैंडर्स की हत्या के बाद संघ के स्वयंसेवक के घर में राजगुरु के छिपने की व्यवस्था डॉ. हेडगेवार ने की। 1931 में संघ के बालाजीहुद्दार को क्रांतिकारी गतिविधि बालाघाट राजनीतिक डकैती केस में सजा दी गयी। 1932 के मध्यप्रांत की सरकारी रिपोर्ट, जुलाई (उत्तरार्द्ध) FL/P&J/12/40 में स्पष्ट कहा गया कि नागपुर की एकमात्र चिंताजनक बात राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की उपस्थिति है। इसके नेता निश्चित तौर पर सरकार विरोधी आंदोलनों से जुड़े रहे हैं। दिसम्बर 1932 में मध्यप्रांत की सरकार के एक आदेश [फाइल 88/33, गृह (राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिल्ली)] द्वारा सरकारी कर्मचारियों को संघ के कार्यक्रम में भाग लेने अथवा सदस्य बनने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। राष्ट्रीय आन्दोलन में भागीदारी की तरह ही हिन्दू संगठनों के सामाजिक कार्यों – छुआ-छूत विरोध, मन्दिर प्रवेश आन्दोलन, सेवा कार्य आदि को भी भुला दिया गया। यहाँ तक कि बंगाल के अकाल 1943 के दौरान सर्वाधिक सेवा-कार्य करने वाले राजनेता श्यामा प्रसाद मुखर्जी के योगदान को भी उपेक्षित किया गया। स्वातंत्र्योत्तर विकृत इतिहास लेखन ने 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में कम्युनिस्टों द्वारा अंग्रेजों की मुखबिरी को छिपा दिया। 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम पर गालिब की स्वातन्त्र्य विरोधी चेतना और सैयद अहमद खाँ की सिपाहियों के प्रति की गयी अपमानजनक टिप्पणी को इतिहास से कहीं बाहर फेंक दिया। वर्तमान इतिहास लेखन 19वीं-20वीं शती के समाज सुधारकों और लेखकों के साथ भी न्याय नहीं करता। यह उनके स्वत्व-बोध, स्वधर्म और सांस्कृतिक चिन्तन की उपेक्षा करता है। इस तरह की चिंता का उल्लेख यदि हुआ भी है तो नकारात्मक अर्थ में। रामविलास शर्मा, वसुधा डालमिया, सुधीरचन्द्र, वीर भारत तलवार और आलोक राय जैसे लेखक इस दृष्टि से न्याय नहीं करते। स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव इस न्याय की उम्मीद पैदा करता है।

स्वतन्त्रता आन्दोलन एक विशेष प्रकार के जागरण का भी संवाहक था। यह जागरण साहित्य, कला-संस्कृति, विज्ञान, आयुर्वेद सब में दिखाई दे रहा था। ये सीधे स्वतन्त्रता सेनानी नहीं थे, किन्तु एक स्वाधीन चेतना इनमें दिखाई पड़ती है। गणित, विज्ञान और आयुर्वेद के क्षेत्र में भी एक प्रकार का राष्ट्रवाद दिखाई पड़ता है। बड़े पैमाने पर आयुर्वेद के ग्रन्थों की रचना हुई जिसने अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति के समानांतर अपनी उपयोगिता सिद्ध की। 1835 में जब यूरोपीय मेडिसिन पद्धति के महाविद्यालय की स्थापना हुई तथा कोलकाता के संस्कृत महाविद्यालय में आयुर्वेद की शिक्षा बंद कर दी गयी तब कविराज गंगाधर राय के नेतृत्व में मुर्शिदाबाद आयुर्वेद के एक बड़े केंद्र के रूप में उभरा। गंगाधर रॉय ने बड़े पैमाने पर आयुर्वेदाचार्यों को प्रशिक्षित किया। ये आयुर्वेदाचार्य पूरे देश में गए। एक प्रकार के आयुर्वेदिक राष्ट्रवाद का उभार दिखाई पड़ रहा था। स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव के अंतर्गत इस चेतना पर विचार कर अकादमिक अध्ययन और जागरण का एक नया युग पैदा करने में भी समर्थ हो सकता है।

स्वतन्त्रता आन्दोलन एक विशेष प्रकार के जागरण का भी संवाहक था। यह जागरण साहित्य, कला-संस्कृति, विज्ञान, आयुर्वेद सब में दिखाई दे रहा था। ये सीधे स्वतन्त्रता सेनानी नहीं थे, किन्तु एक स्वाधीन चेतना इनमें दिखाई पड़ती है। गणित, विज्ञान और आयुर्वेद के क्षेत्र में भी एक प्रकार का राष्ट्रवाद दिखाई पड़ता है। बड़े पैमाने पर आयुर्वेद के ग्रन्थों की रचना हुई जिसने अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति के समानान्तर अपनी उपयोगिता सिद्ध की।

स्वतंत्रता से लेकर आज तक की भारत की उपलब्धियों का मूल्यांकन भी स्वतंत्रता के इस अमृत महोत्सव के अंतर्गत किया जाना है। जैसे स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास कांग्रेस केन्द्रित है, वैसे ही स्वातन्त्र्योत्तर इतिहास नेहरू परिवार केन्द्रित है। श्यामा प्रसाद मुखर्जी, भीमराव आंबेडकर, दीनदयाल उपाध्याय, नरसिंह राव, मोरारजी देसाई और अटल बिहारी वाजपेयी जैसे कृति व्यक्तित्वों का उचित मूल्यांकन अब तक नहीं हुआ है। ऐसे ही राष्ट्र को परम वैभव तक पहुँचाने के उद्देश्य को लेकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपने विविध आनुषंगिक संगठनों के माध्यम से समाज जीवन के विविध क्षेत्रों में निरंतर क्रियाशील है। नकारात्मक इतिहास लेखन के कारण इसका महत्त्व भी ठीक से सामने नहीं आ सका है। इसके अतिरिक्त भारत विरोधी शक्तियाँ अकादमिक जगत् पर वर्चस्व स्थापित कर राष्ट्रीय एकता को विखंडित करने की मंशा से 'अ नेशन विदाउट नेशन', 'नेशन एंड इट्सफ्रेगमेंट' जैसी पुस्तकों की निर्मिति में रत हैं। स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव इन सभी दृष्टियों से आवश्यक है।

'स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव' के माध्यम से भारत के इतिहास का पुनर्लेखन होना है, भारत के स्वत्व का एक बार पुन: जागरण होना है। हमारा सौभाग्य है कि हम इस नये ज्ञानोदय को साक्षी बनाने जा रहे हैं। ❑

भारतीय चिंतन परम्परा में धारणक्षम विकास

डॉ. सुमन बाला
सह आचार्य,
हरिभाउ उपाध्याय महिला शिक्षक महाविद्यालय,
हटूंडी, अजमेर (राज.)

प्राचीन भारतीय चिंतन में प्रकृति से प्रेम एवं मैत्रीभाव संस्कारजन्य हैं। यहाँ के मनीषियों तथा प्रकृति प्रेमियों ने प्रकृति को उच्च स्थान दिया तथा स्वयं को प्रकृति के इस विराट् स्वरूप का अंग मानते हुए प्रकृति और उसके सभी अवयवों को पूज्य माना है। इसी कारण भारतीय संस्कृति में प्रकृति और पर्यावरण प्रत्येक क्षेत्र में रचे बसे हैं। हमारे प्राचीन ग्रंथों के अनुसार जीव प्रकृति का आकार है, पर प्रकृति सनातन स्वरूप में गतिशील रहकर प्रत्येक जीव को स्पंदित रखती है। यह स्पंदन ही जीवन के सनातन आकार को गतिशीलता प्रदान करता है। हमारी परम्पराएँ प्रकृति और मानव की सह-अस्तित्व की धारणा को समाहित किए हुए रही है, भारतीय चिंतन में न केवल प्रकृति से सहअस्तित्व की धारणा है; अपितु उसके प्रति मातृत्व एवं दैवीय भावयुक्त सम्मान भी प्राचीन काल से रहा है। इसी भाव के फलस्वरूप हमारी सारी क्रियाएँ, प्रणालियाँ, आचरण और व्यवहार प्रकृति के अवयवों के संरक्षण और संवर्धन के अनुरूप रहा है। वैश्विक सभ्यता एवं संस्कृति के आदि ग्रंथ वेदों में प्रकृति के ही गीत हैं और प्रकृति को ही समर्पित हैं। हमारी प्रकृति के प्रति सौहार्द और सामंजस्य की दृष्टि ही है, न कि उसको भोगने की। प्रकृति के प्रति हमारी इसी सामंजस्य, सह अस्तित्व और सौहार्दपूर्ण दृष्टि के कारण हमारा उससे संघर्ष, शोषण और दोहन का भाव हो ही नहीं सकता। जब वैदिक ऋषि 'माता: भूमि: पुत्रोऽहम् पृथिव्या:' कहता है तो माता से कोई संघर्ष करने की कल्पना कैसे कर सकता है? भारतीय चिंतन परम्परा मे आज भी पृथ्वी को माता मानकर उसके प्रति पूजनीय भाव दृष्टिगोचर होता है। आज भी हम सुबह उठकर पृथ्वी पर पाँव रखने से पूर्व अभिवादन करते हुए उस पर अपना भार रखने की क्षमा माँगते हैं –

संमुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।।
विष्णुपत्नीं नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।

आज भी हम चाहे शहरी क्षेत्र से हों अथवा ग्रामीण क्षेत्र से अपना घर बनाने से पूर्व भूमि पूजन की परम्परा का अनिवार्य रूप से श्रद्धापूर्वक निर्वाह करते हैं।

भारतीय संस्कृति में प्रकृति और उसके अवयवों को ईश्वर तुल्य मानकर आवश्यकतानुरूप सीमित मात्रा में ही प्रकृति से लेने की परम्परा रही है। प्रकृति से यह सीमित मात्रा में ग्रहण करने से पूर्व भी उसकी स्तुति अभ्यर्थना और पूजा करने की परम्परा में विश्वास करने वाला भारतीय जन प्रकृति और उसके अवयवों के शोषण के विषय में किस प्रकार सोच सकता है। भारतीय चिंतन और दृष्टिकोण धरती माता, गंगा माता, तुलसी माता, गोमाता, सूर्य देवता, चन्द्र देवता, नाग देवता आदि की पूजा अर्चना उसको

ईश्वरीय स्वरूप में मानकर ही करता है। हमारे वैदिक साहित्य में प्रकृति और इसके अवयवों की स्तुति के अनेक मन्त्र हैं। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में 63 मंत्र हैं, जिनमें धरती माता की प्रार्थना है। अन्य साहित्यों में भी अग्नि, वायु और जल से सम्बन्धित मंत्र और गीतों का होना हमारा प्रकृति और इससे संबंधित अवयवों से हमारे सम्बन्ध को तो प्रकट करता ही है और साथ में हमारे पर्यावरणीय मूल्यों को भी दर्शाता है। भारतीय परम्परा में नदी माता रूप में है तो समुद्र पिता रूप में देवतुल्य है। जीवन का आधार जल और जल स्रोतों के पूजन की परम्पराएँ हमारे यहाँ प्राचीन काल से चली आ रही हैं और आज तक भी भारतीय जन मानस में विद्यमान है। हमारे धर्मग्रंथों में भी जल संरक्षण, जल प्रबन्धन एवं जलदान को पुण्य और धर्म का कार्य माना गया है। इस कार्य के महत्त्व को स्वीकारते हुए वर्तमान में भी पीने के जल हेतु प्याऊ का निर्माण हो अथवा कुएँ एवं हैंडपम्प का निर्माण जैसे पुण्य कार्य को खुशी-खुशी किया जाता है। जल के महत्त्व को स्वीकार कर भारत में जल संचयन की सुदीर्घ परम्परागत प्रणालियाँ रही हैं। राजस्थान, गुजरात आदि राज्यों की बावड़ियों की वास्तुकला आज भी विश्व की बेजोड़ धरोहर स्वीकार की गई है। हमारे धर्म ग्रंथों में न केवल जल स्रोतों के निर्माण करने; अपितु इन्हें स्वच्छ रखने का परामर्श भी दिया गया है। पद्मपुराण में नदी के तटों को मूत्र, पुरीश, श्लेष्मा, आँख के कीच, मल आदि से दूषित करने वाले को पापी कहा गया है। इस प्रकार हमारी चिन्तन परम्परा में प्रकृति के संरक्षण के साथ-साथ उसको दूषण से बचाने का दृष्टिकोण भी रहा है, ताकि प्रकृति की धारणक्षमता बनी रह सके। हमारे विभिन्न व्रत-त्योहारों के पीछे भी प्रकृति पूजन एवं पर्यावरण संरक्षण का चिन्तन रहा है। विभिन्न प्रकार के वृक्षों की पूजा, पशु-पक्षियों की पूजा भारतीय चिन्तन धारा के वृक्षों में देवी-देवताओं का वास, विभिन्न पशु-पक्षियों को देवी-देवताओं के वाहन के रूप में कल्पना के पीछे इनके संरक्षण एवं संवर्धन की ही दृष्टि रही है। हमारे प्रत्येक व्रत-त्योहारों के पीछे भी प्रकृति की महत्ता और पर्यावरण के संरक्षण की अवधारणा ही काम कर रही है। यह व्रत -त्योहार, रीति-रिवाज प्रत्येक क्षेत्र के भारतीय में किसी-न-किसी रूप में आज भी विद्यमान है।

भारतीय प्राचीन ग्रंथों के साथ-साथ उसके पश्चात् के साहित्य में भी प्रकृति का चित्रण पर्यावरण संरक्षण का संदेश देता है, जो वर्तमान की परम्पराओं में भी परिलक्षित होता है। उदाहरण स्वरूप कालिदास के महर्षि कण्व को शकुन्तला अत्यन्त प्रिय है; किन्तु शकुन्तला से भी प्रिय वृक्ष हैं। शकुन्तला स्वयं से अधिक वृक्षों को प्रेम करती है। वह स्वयं तब तक जल ग्रहण नहीं करती, जब तक वह लता पादपों को जल नहीं पिला देती। आज भी भारतीय चिन्तन की यह परम्परा कहीं तुलसी को जल चढ़ाने, व्रत, पीपल सींचने आदि के रूप में विद्यमान है। हमारी चिन्तन परम्परा में जड़, चेतन, जग, जीवन आदि सबको देवतुल्य मानकर पूजा गया है; क्योंकि हमारे मनीषी प्रकृति एवं उसके अवयवों की शक्ति को और उसके कल्याणकारी स्वरूप को भली-भाँति जानते समझते थे। प्रकृति के विभिन्न पक्ष जैसे वृक्ष, वनस्पतियाँ, नदियाँ, पर्वत पहाड़, जीव-जन्तु, बादल, वर्षा, भूमि, वायु, सूर्य, तारे, नक्षत्र, ग्रह, अन्तरिक्ष इत्यादि सभी में देवत्व की अर्थात् इस जगत् और मनुष्य को देकर उपकृत करने की प्रवृत्ति के अनुभव करने के कारण ये सब पूजनीय माने गए । एक पक्ष की दूसरे से सम्बद्धता और आत्मनिर्भरता को हमारे मनीषियों ने भली-भाँति पहचानकर उन्हें स्वच्छ एवं संरक्षित रखने के उपायों को जनमानस के व्यवहार में विभिन्न प्रणालियों/कार्यों के रूप में स्थापित भी किया। हमारे यज्ञ की सामग्री जहां अपनी उत्तम सुगन्ध व गुणों से बाह्य पर्यावरण में व्याप्त हानिकारक और विषैले तत्त्वों के प्रभाव को दूर करता है, वहीं यज्ञ कर्म एवं मन्त्र जाप हमारे शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा को स्पन्दित कर आन्तरिक पर्यावरण को राग द्वेष, मद-मोह, लोभ-स्वार्थ की भावनाओं को दूर करता है। जब हम 'इदं न मम' (यह मेरा नहीं है) के उच्चारण के साथ सभी प्रकृति पक्षों की आहूति को अग्नि को समर्पित करते हैं तो उसमें स्वार्थ और अहंकार भी दूर होकर हमारी आत्मा को पवित्र करते हैं। यज्ञ जैसे

सर्वश्रेष्ठ कार्य को करते हुए हम (भद्रं कर्णेभिः श्रुणुयाम देवोः। भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजा) कल्याणकारी सुनने और देखने की प्रार्थना करते हैं। हम प्रकृति के समस्त तत्त्वों से मंगल करने, कृपा बनाए रखने, प्रकृति के प्रति मित्रभाव से देखने का, व्यवहार करने का हमारा आधार भारतीय चिन्तन परम्परा की ही शक्ति है। इस प्रकार जीव–जगत के बीच घनिष्ठ व सार्थक समझदारी ही मानव की विकास यात्रा को सतत बनाए रख सकती है और इस आधार पर आधारित विकास ही धारणक्षम हो सकता है। हमारे चिन्तन में प्रकृति से की गई प्रार्थनाएँ केवल स्वयं के लिए नहीं; अपितु समस्त संसार को परिवार मानते हुए एकता के सिद्धान्त को अपनाकर 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की सुखद और कल्याणकारी परिकल्पना की गई है।

विकास और पर्यावरण के मध्य एक अटूट सम्बन्ध है। पर्यावरण के सही रहने पर ही विकास संभव है, चाहे वह किसी भी क्षेत्र का हो। जिस प्रकार प्रकृति एवं पर्यावरण के विषय में भारतीय चिन्तन धारा पश्चिम विचारधारा से मेल नहीं रखती, उसी प्रकार विकास और धारणक्षम विकास की अवधारणा भी हमारी पश्चिम से भिन्नता लिए हुए है। पश्चिम में विकास का पैमाना प्रति व्यक्ति वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि है जो वस्तुओं एवं सेवाओं का अधिक से अधिक उपभोग करके ही की जा सकती है। वहाँ व्यक्ति अपने रहन–सहन के स्तर में वृद्धि और व्यक्तिगत सुख–सुविधाओं को ही अपने जीवन का लक्ष्य मानता रहा है। सकल घरेलू उत्पाद पर आधारित विकास मानव को संसाधनों के उपभोग में निरन्तर वृद्धि की ओर लेकर जा रहा है। इस दृष्टि से वह व्यक्ति और राष्ट्र ही विकसित की श्रेणी में माने जाएँगे जो संसाधनों का उपभोग अन्य की अपेक्षा अधिक कर रहे हैं और भविष्य में भी इसमें निरन्तर बढ़ोतरी करते रहेंगे। विकास की इस अवधारणा में मनुष्य एक आर्थिक इकाई है और उसका प्रत्येक कार्य एवं निर्णय अर्थ यानि धन के आधार पर ही आधारित होगा जैसा कि वर्तमान में दिखाई दे रहा है। विकास की इस अवधारणा ने उपभोक्तावाद को बढ़ावा दिया है और यह भोगवादी जीवन शैली को निरन्तर बढ़ाती जा रही है। उपभोग की वस्तुओं की लालसा और आकांक्षा को पूरा करने के लिए निरन्तर उत्पादन में वृद्धि करनी होगी, जो प्राकृतिक संसाधनों का बेरहमी से शोषण करके और कल–कारखानों के निर्माण के द्वारा ही होगा। इस प्रकार की प्रक्रिया से जहाँ पृथ्वी संसाधनों से रिक्त होती जा रही है, वहीं चारों ओर विभिन्न प्रकार के प्रदूषण मानव के जीवन के लिए संकट उत्पन्न कर रहे हैं। धीरे–धीरे इस विकास ने समूचे प्राणियों के लिए अस्तित्व का संकट खड़ा करने के साथ–साथ मनुष्य की भावनाओं और मानवीय संवेदनाओं को भी दूषित कर दिया है। संसाधनों पर कुछ ही लोगों का स्वामित्व बढ़ रहा है और गरीब और अधिक गरीब और साधन विहीन हो रहा है। वर्तमान में पश्चिम के विकास की इस अवधारणा को अपनाकर 20 प्रतिशत लोग प्रकृति के 80 प्रतिशत संसाधनों के स्वामी बनकर, 50 प्रतिशत भूक्षेत्र एवं 60 प्रतिशत ऊर्जा का उपभोग कर रहे हैं। विश्व की कुल आय में इस वर्ग का 85 प्रतिशत हिस्सा है। विकास के लिए जिस प्रकार की तकनीक वर्तमान में उपयोग की जा रही है वह गैर पुनरुत्पादकीय खनिज एवं ऊर्जा के स्रोतों को तेजी से नष्ट कर रही है। भूमि की उत्पादन क्षमता को रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशी दवाओं और अधिक उपज देने वाले बीजों से कम कर अन्न की गुणवत्ता को भी कम करती जा रही है जिससे भूमि बंजर होकर मरूस्थलीकरण जैसी समस्याओं को जन्म दे रही है। जैव विविधता निरन्तर कम होती जा रही है जो कि सतत विकास का आधार स्तम्भ है। औद्योगिक क्रान्तियों को फलस्वरूप दीर्घकालिक और वैश्विक परिवर्तनों, वैश्विक तापन, पर्यावरणीय प्रदूषण, वायुमण्डलीय गैसीय संगठन में परिवर्तन, भूमि व जल स्रोतों का प्रदूषण, भूमि निम्नीकरण और मरूस्थलीकरण, त्वरित गति से जैवविविधता को हास के साथ–साथ वैश्वीकरण की गला काट प्रतिस्पर्धा ने मानव सम्बन्धों के विश्वास के ताने–बाने को भी छिन्न–भिन्न किया है। पश्चिम का यह विकास चिंतन अर्थ और काम पर ही केन्द्रित होकर रह गया है। आर्थिक केन्द्रीकरण द्वारा जीवन की बेहतर गुणवत्ता भी केवल कुछ ही लोगों तक सीमित होकर रह गयी है और अधिकांश लोग दिन प्रतिदिन हाशिये पर चले जा रहे हैं। अधिकतर लोग परावलंबी बनकर आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु

भारतीय संस्कृति में प्रकृति और उसके अवयवों को ईश्वर तुल्य मानकर आवश्यकतानुरूप सीमित मात्रा में ही प्रकृति से लेने की परम्परा रही है। प्रकृति से यह सीमित मात्रा में ग्रहण करने से पूर्व भी उसकी स्तुति अभ्यर्थना और पूजा करने की परम्परा में विश्वास करने वाला भारतीय जन प्रकृति और उसके अवयवों के शोषण के विषय में किस प्रकार सोच सकता है। भारतीय चिंतन और दृष्टिकोण धरती माता, गंगा माता, तुलसी माता, गोमाता, सूर्य देवता, चन्द्र देवता, नाग देवता आदि की पूजा अर्चना उसको ईश्वरीय स्वरूप में मानकर ही करता है। हमारे वैदिक साहित्य में प्रकृति और इसके अवयवों की स्तुति के अनेक मन्त्र हैं। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में 63 मंत्र हैं, जिनमें धरती माता की प्रार्थना है।

संघर्षरत हैं। इस प्रकार का एकाकी पक्षीय विकास अस्थिर और अपोषणीय ही है जो दीर्घ कालिक तो कतई नहीं हो सकता है। विकास की इस प्रक्रिया में उन प्राकृतिक प्रणालियों को खतरे में डाल दिया गया है, जिनसे इस पृथ्वी का जीवन बना हुआ है। यह अस्थिर होने के साथ असंतुलित और अनियन्त्रित भी है, जिसके जिए आचार्य महाप्रज्ञ जी ने कहा है कि ''गैर टिकाऊ या अस्थिर, अनियन्त्रित व असन्तुलित विकास परमाणु सर्वनाश से भी कई गुना अधिक भयावह होता है।''

भारतीय विकास की अवधारणा पश्चिम के विकास की अवधारणा से भिन्न विकास के समग्र, सार्थक और व्यावहारिक पक्ष की पक्षधर है, जो यहाँ प्राचीन काल से हमारी संस्कृति में रचा बसा है; परन्तु हम पश्चिम के अन्धानुकरण के कारण अपनी सर्वसमावेशी चिन्तन परम्पराओं को विस्मृत करने में लगे हैं। हमारी विकास की अवधारणा इस पृथ्वी के प्रत्येक प्राणी के हित को ध्यान में रखकर सबकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के अनुरूप स्वयं के साथ-साथ समाज के लिए उपयोगी होने के साथ-साथ सभी को न्यायपूर्ण ढंग से निरन्तर प्रगति के समान अवसरों की प्राप्ति के उद्देश्य को समाहित किए हुए हैं। भारतीय चिन्तन परम्पराएँ प्रकृति एवं उसके अवयवों का संरक्षण एवं संवर्धन करने वाली है। संरक्षण और धारणक्षमता एक ही सिक्के के दो पक्ष हैं और इतनी गहनता से एक दूसरे से जुड़े हैं कि एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। पश्चिमी अवधारणा के विपरीत भारतीय चिन्तन में विकास की प्रकृति ही धारणक्षम हैं। केवल आर्थिक पक्ष को ही विकास का संकेत न मानकर भारतीय मानस पारिस्थितिकी और सामाजिक सांस्कृतिक पक्षों को भी इसमें सम्मिलित करता है। धारणक्षम विकास के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष सबसे महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि यही समाज की मूल्य प्रणालियों को निर्धारित कर वहाँ के लोगों के आचरण व्यवहार को तदनुरूप विकसित करता है। समाज में प्रचलित ये व्यवहार प्रणालियाँ समय के साथ परीक्षित और मूल्य आधारित हैं जो हमारे परम्परागत समाजों के पर्यावरण के साथ सह-उद्‌भव का परिणाम है। इन परम्परागत समाजों ने पर्यावरण एवं परिस्थिति की प्रकृति में केवल इस सीमा तक ही परिवर्तन किया जिससे इनकी विविधता और उत्पादकता सक्रिय रूप से बनी रहे। हमारी सभी सामाजिक सांस्कृतिक क्रियाएँ और धार्मिक विश्वास क्षेत्रीय परम्परागत पारिस्थितिकीय ज्ञान से विकसित और उसके आधार पर ही स्थापित हुई हैं। विभिन्न देशों में रहने वाली जातियों-जनजातियों ने अपनी प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों के साथ अपने अनुभवों के आधार पर जो पारिस्थितिकीय ज्ञान विकसित किया है, वह बाह्य प्रत्यक्ष अनुभवों के साथ उनकी आन्तरिक अनुभूति (आत्मबोध) पर भी आधारित था। यह परम्परागत ज्ञान आर्थिक या पारिस्थितिकीय अथवा समाज के विभिन्न खण्डों में देखने की बजाए समग्रता में देखने के दृष्टिकोण पर आधारित है, इसलिए हमारे परम्परागत भारतीय चिन्तन में प्रकृति सम्पूर्णता के एक अंश के रूप में मानव है न कि वह प्रकृति का स्वामी है। इस दृष्टि ने हमारे दृष्टिकोण को पारिस्थितिकी केन्द्रित बनाया है जो कि अर्थ-केन्द्रित हमारे परम्परागत समाज की प्रकृति और उसके अवयवों (पादप, प्राणी, नदी, भूमि, पर्वत इत्यादि) के प्रति अभिवृत्ति का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। हमारा यह परम्परागत सम्पूर्ण पारिस्थितिकीय ज्ञान पौधों और प्राणियों की जातियों के समाज के लिए महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए निर्धारित हुआ है। उदाहरण के तौर पर जितने भी अधिक नाइट्रोजन स्थिरीकरण अथवा चिकित्सकीय महत्त्व वाले पादप हैं उन्हें पूज्य स्थान प्रदान कर उनके प्रति भारतीय जनमानस में संरक्षण भाव एवं व्यवहार को विकसित किया गया है। वैसे तो सभी पादप पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के लिए महत्त्वपूर्ण हैं; परन्तु जिनका महत्त्व भूमि की उर्वरकता को बढ़ाने में, वायुमण्डल के गैसीय सन्तुलन एवं प्रदूषण नियन्त्रण में, मृदा आद्रता के संरक्षण में पोषण चक्र में, चिकित्सकीय उपयोग में और जैवविविधता में अधिक सहायक है, उन्हें पवित्र मानकर संरक्षण प्रदान करने की परम्पराएँ धारणक्षम विकास के अनुरूप और सहायक रही हैं। इसी प्रकार हमारी परम्परागत जल संरक्षण एवं प्रबन्धन की तकनीक, उत्पादकता प्रबन्धन क्रियाएँ

जैविक कृषि, वन प्रबन्धन तथा संवर्धन तकनीक, स्वास्थ्य एवं चिकित्सकीय पद्धतियाँ, योग, आयुर्वेद इत्यादि अनेक ऐसी परम्परागत ज्ञान आधारित क्रियाएँ व प्रणालियां है जो वर्तमान में भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण होने के साथ-साथ धारणक्षम विकास के लिए पथ प्रदर्शक भी हो सकती है। यह परम्परागत तकनीक पारिस्थितिकी को समग्रता से देखती है, जिसमें आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक पक्षों के मध्य अन्तर्सम्बन्धता है। इसके आधार पर विकसित तन्त्र पोषणीयता के साथ निरन्तरता लिए हुए भी है। यदि अभी भी पश्चिम की विचारधारा के अनुसार हम विकास व धारणक्षमता के एक ही पक्ष से मापते रहे तो यह अधिक समय तक चलने वाला नहीं है। इस सन्दर्भ में आधुनिक पश्चिमवादी विकास के दोष की चर्चा करते हुए डॉ. बजरंग लाल गुप्ता अपनी पुस्तक में लिखते हैं- ''समस्याओं को सुलझाने की बजाय विकास के प्रतिमान वास्तव में समस्याएँ पैदा कर रहे हैं, उन्हें बढ़ा रहे हैं। हम देख सकते हैं कि दुनिया भर में गरीबी, असमानता और बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। नैतिक, सांस्कृतिक और मानवीय मूल्यों के ह्रास और पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन के क्षरण ने स्थिति को और भी बदतर बना दिया है। ये सब चीजें देखकर लोग ये सोचने पर मजबूर हो गए हैं कि कहीं हम विकास की ओर बढ़ते हुए तबाही की तरफ तो नहीं जा रहे हैं; इसलिए आज हम देखते हैं कि वैश्विक अर्थतन्त्र खासकर विकासशील जगत् का अर्थतन्त्र विकास के अपने संघर्ष में चौराहे पर खड़ा है।''

धारणक्षम विकास का पथ भारतीय परम्परागत चिन्तन में निहित परम्परागत पारिस्थितिकीय ज्ञान द्वारा ही निर्धारित होकर ही प्रशस्त हो सकता है। इस ज्ञान की छोटी-छोटी परम्पराएँ भी मानव हितैषी और पर्यावरण सन्तुलन के अनुकूल हैं। अनुसंधान भी समय-समय पर इस परम्परागत ज्ञान आधारित क्रियाओं के सुरक्षित और लाभदायक होने की पुष्टि करता रहा है। उदाहरण के रूप में विभिन्न त्यौहारों और अवसरों पर मिट्टी के घड़े का उपयोग हमारी परम्परा में प्रचलित है। वैज्ञानिकों ने पानी के प्रसंग में खोजों के आधार पर सिद्ध किया है पानी को जिस बर्तन में रखा जाता है उसी के अनुसार

मनुष्य जीवन को बेहतर गुणवत्ता प्रकृति एवं पर्यावरण गुणवत्ता प्रबन्धन के साथ और बिना प्राकृतिक संसाधनों के दोहन व निम्नीकरण द्वारा बननी चाहिए। यह केवल हमारे परम्परागत ज्ञान को आधार मानकर विकसित तकनीकों द्वारा और हमारे भारतीय चिन्तन द्वारा निर्धारित जीवन उद्देश्यों द्वारा ही संभव है।

उसकी शुद्धता रहती है। राष्ट्रीय पोषण संस्थान, हैदराबाद के अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि अलग-अलग धातु के बर्तनों में पानी जमा रखने की अपेक्षा मिट्टी के बर्तनों में रखने से जीवाणुओं के पनपने पर रोक रहती है और लम्बे समय तक शुद्ध बना रहता है। मिट्टी के बर्तन में खाना पकाना और खाना भी स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। धारणक्षम विकास के लिए आवश्यक है कि धारणक्षमता का आकलन पारिस्थितिकीय, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संकेतांकों के सम्मिलित आधार को मानकर और समाज की मूल्य आधारित व्यवस्था पर किया जाए तभी वह विकास दीर्घकालिक हो सकता है। इन सभी पक्षों को केवल मात्रात्मक रूप में ही नहीं; अपितु गुणात्मक रूप में भी आकलन करना आवश्यक है। यह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि कितना अन्न हम प्रति हेक्टेयर उपन्न कर रहे हैं; अपितु यह अधिक महत्त्वपूर्ण है कि अन्न की गुणवत्ता क्या है, उसका हमारे शरीर एवं स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, इस अन्न की उपज से भूमि की गुणवत्ता पर क्या प्रभाव पड़ा है और अन्न उपजाने की प्रक्रियाओं से प्रकृति के विभिन्न घटक (वायु, जल, भूमि, अन्य पादप, जन्तु इत्यादि) किस प्रकार प्रभावित हो रहे हैं? मनुष्य जीवन को बेहतर गुणवत्ता प्रकृति एवं पर्यावरण गुणवत्ता प्रबन्धन के साथ और बिना प्राकृतिक संसाधनों के दोहन व निम्नीकरण द्वारा बननी चाहिए। यह केवल हमारे परम्परागत ज्ञान को आधार मानकर विकसित तकनीकों द्वारा और हमारे भारतीय चिन्तन द्वारा निर्धारित जीवन उद्देश्यों द्वारा ही संभव है। प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग सीमित और आवश्यकतानुसार हो, जीवन शैली संयत और हमारा आचरण सदाचारी हो, विकास सभी की सहभागिता से सबके लिए हो और एकांगी आधारित हो, आध्यात्मिक उन्नति समृद्धि का आधार बने, विकास हमें स्वावलंबी बनने की ओर लेकर जाए और विकास समाज की उन्नति के लिए होगा तब वह धारणक्षम हो सकेगा। भारतीय परम्परागत ज्ञान को आधार बनाकर और शाश्वत जीवन मूल्यों द्वारा ही भविष्य उन्मुख धारणक्षम विकास संभव हो सकता है।

इसके लिए प्राचीन काल का समग्र पारिस्थितिकीय चिंतन स्वयं पोषित एवं स्वावलंबी ग्रामीण इकाईयों की स्थापना और भारतीय जीवन मूल्यों पर आधारित आचरण के मानदंडों का निर्धारण करना अनिवार्य है, अन्यथा यह कथन सिद्ध होने से कोई भी रोक नहीं पाएगा कि ''आधुनिक सभ्यताएँ आत्मविनाश के ढेर पर बैठी हैं जो कभी भी ज्वालामुखी बन सकती हैं।'' ❑

स्वराज 75 और राष्ट्रीय शिक्षा नीति की विकास यात्रा

डॉ. रेखा यादव
सहआचार्य दर्शनशास्त्र,
सम्राट पृथ्वीराज चौहान
राजकीय महाविद्यालय,
अजमेर (राज.)

भारत प्राचीन राष्ट्र है जिसकी समृद्ध सांस्कृतिक और सामाजिक विरासत है। भारतीय संस्कृति की विशेषता है कि उसका स्वरूप समन्वय प्रधान है इसलिए भारतीय संस्कृति में नए के आगमन के प्रति कभी कोई भय नहीं रहा और जो सनातन चला आ रहा है उसका भी भारतीय मनीषा निरीक्षण-परीक्षण करती रही है। भारतीय दर्शन का उद्देश्य सत का ज्ञान प्राप्त करना है जिसकी उपलब्धि सिर्फ बौद्धिक कुशलता में नहीं है बल्कि आत्म साक्षात्कार में है। आधुनिक भारत की स्वतंत्रता को 75 साल हुए हैं परंतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति का उद्देश्य क्या हो? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। भारत जैसे देश में परिवर्तन को संसार का नित्य नियम माना गया है परंतु उस परिवर्तन में कभी मूल उद्देश्य की दृष्टि ओझल नहीं होती और सांसारिक आवश्यकताओं के लिए अपरा विद्या का भी उन्नत साहित्य उपलब्ध है। भारत में वैदिक काल से लेकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति तक विभिन्न प्रकार के शिक्षा के प्रयोग रहे हैं जिनका मूल्यांकन करके हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के उज्जवल भविष्य की कामना कर सकते हैं।

भारतीय परंपरा प्रयोग और प्रेक्षण से अछूती नहीं रही है इसलिए भारतीय दर्शन और ज्ञान परंपरा में विचार स्वतंत्रता का स्थान रहा है परंतु विचार स्वतंत्रता यदि लोकहित के विपरीत हो तो उसे त्याग देने को कहा गया है। सामाजिक जीवन इस प्राचीन सांस्कृतिक परंपरा का मूल प्राण है इसलिए व्यक्ति और समाज के संबंधों में बड़ी गरिमामयी स्थिति रही है। व्यक्ति की निजी उपलब्धियाँ भी समाज और प्रकृति के बिना पूरी नहीं हो सकती, यह भावना हमारी वैदिक संस्कृति में रही है। भारत पिछले 300 सालों से यूरोप के प्रत्यक्ष संपर्क में रहा है। आज व्यक्ति की स्वतंत्रता और सुख का विमर्श पुनः व्याख्या की माँग कर रहा है। भौतिकतावादी विकास मनुष्य और समाज के विकास की कुंजी नहीं माना जा सकता। 'एक धरती एक स्वास्थ्य' आज विकास का मानक है जिसके प्रति जागृति का माध्यम शिक्षा ही है।

भारतीय भूमि पर ज्ञान के प्रति जो आदर भाव रहा है उसकी प्रशंसा यहाँ आने वाले विदेशी यात्रियों के ग्रंथों में भी है। इस भारतीय ज्ञान यात्रा में समग्र जीवन के विकास के कुछ पक्षों के असंतुलन को लंबे आक्रमण और पराधीनता का कारण कहा जा सकता है परंतु जो इतिहास बन चुका है वह हमारे भविष्य की दिशा को समझने में सहायता कर सकता है इसलिए भारत की शिक्षा यात्रा के मुख्य बिंदुओं पर विचार करना आवश्यक है।

भारत का आदि साहित्य वेद है। वैदिक कालीन शिक्षा के मुख्य उद्देश्य में सदाचार, ईश्वर के प्रति आस्था, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक और सामाजिक कर्तव्य का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति के साथ आत्मविकस की पूर्णता थी। शिक्षा को ज्ञान के पर्याय के रूप में ही लिया जाता था और ज्ञान के विकास के साथ ही मानवी जीवन में स्वास्थ्य, जीविकोपार्जन और कला कौशल की शिक्षा भी दी जाती थी। बौद्ध धर्म के राज्य के केंद्र में आने पर शिक्षा का स्वरूप वैदिक शिक्षा से भिन्न एक सामान्य जन शिक्षा के रूप में आया परंतु तब भी नैतिक और चारित्रिक शिक्षा तथा कला कौशल का ज्ञान राज्य के प्रमुख सरोकार थे। वैदिक शिक्षा प्रणाली और बौद्ध धर्म की शिक्षा प्रणाली में आत्म संयम और अध्यात्मिक ज्ञान का बहुत महत्त्व था। शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ-मौखिक, अनुकरणात्मक, प्रश्न-उत्तर और व्याख्या पर आधारित थी।

मुगल कालीन शिक्षा में सांसारिक ऐश्वर्य को उचित माना गया और शिक्षा का

एक नया स्वरूप हमारे सामने आया जिसमें एक नई संस्कृति, नई भाषाओं से भारतीयों का परिचय हुआ। इस शिक्षा में भी स्मरण पद्धति का बहुत महत्त्व था परंतु नैतिक शिक्षा सिर्फ धर्म विशेष के ही अनुकूल थी। शासन के प्रति वफादारी को शिक्षा का एक मुख्य अंग माना जाने लगा। राजकीय पदों की प्राप्ति के लिए नई भाषा अरबी और फ़ारसी सीखी जाने लगी। सैनिक शिक्षा भी शिक्षा के केंद्र में आ गयी। परंतु इस समय तक हिंदू शिक्षा प्रणाली और इस्लामिक शिक्षा प्रणाली समानांतर चलती रही जिनके कुछ बिंदुओं में समानता थी जैसे अनुशासन और धार्मिक शिक्षा परंतु भाषा और संस्कृति का एक नया अंतर इस प्रकार की शिक्षा पद्धति के समावेश से समाज में आया।

अंग्रेजों के आने के बाद एक नई तरह की शिक्षा व्यवस्था से भारतीय समाज का परिचय हुआ जिसने सभी के लिए एक जैसी शिक्षा नीति की बात की परंतु शिक्षा का प्रयोग भारतीय समाज के सांस्कृतिक-सामाजिक जीवन के अनुकूल नहीं था सिर्फ आजीविका के लिए शिक्षा की व्यवस्था और पश्चिम के अनुकूल हित ही मुख्य सरोकार थे। भारत के इतिहास को देखते हुए हम यह स्पष्ट निष्कर्ष रख सकते हैं कि शिक्षा हमेशा सत्ता से प्रभावित रहती है और सत्ता या राज्य शक्ति अपने अनुरूप शिक्षा को आकार देती है।

अंग्रेजों के चार्टर एक्ट 1813 के द्वारा भारतीय शिक्षा में एक नए युग का आरंभ हुआ जब मिशनरियों को भारत में प्रवेश करने और ईसाई धर्म शिक्षा के प्रसार की छूट दी गई। इस नए प्रयोग में कुछ चीजें अस्पष्ट थी जिसके कारण दो प्रकार की विचारधाराएँ शिक्षा के क्षेत्र में दिखाई दी जिसे ओरिएंटल-ऑक्सीडेंटल विवाद कहा जाता है। ओरिएंटल या प्राच्यवादी वर्ग ने भारत की संस्कृति उसके भाषा साहित्य को शिक्षा के लिए आवश्यक माना परंतु ऑक्सीडेंटल या पाश्चात्य परंपरा का समर्थन करने वाले लोग भारतीयों के भाषा साहित्य को पश्चिमी ज्ञान विज्ञान की तुलना में नीचा मानते थे। अंग्रेज भारतीय समाज के प्रति सद्‌भावना नहीं रखते थे वे भारतीयों को विभाजित धर्म और जातियों में रखना चाहते थे। 1823 में जन शिक्षा समिति का गठन किया गया और लॉर्ड बेंटिक ने गवर्नर जनरल की काउंसिल के विधि सदस्य लॉर्ड मैकाले को जन शिक्षा समिति का सभापति नियुक्त किया। इसके बाद भारतीय शैक्षिक

वातावरण में एक बड़ा परिवर्तन आया और देशज विद्यालयों की संख्या में कमी आई। अंग्रेजी शिक्षा के प्रति आकर्षण बढ़ा और भारत में वर्ग-भेद का उदय हुआ। अंग्रेजी के प्रति आकर्षण, सरकारी नौकरियों के प्रति आकर्षण भारतीय समाज में बढ़ा। अंग्रेजी शिक्षा के काल ने भारतीयों को सिर्फ निचली नौकरियों के काबिल बनाया और ज्ञान की साधना नेपथ्य में चली गई। आचरण और ज्ञान का संबंध भी टूट गया।

लॉर्ड मैकाले के विवरण पत्र से भारत में शिक्षा के प्रयोग बड़े कूटनीतिक स्तर पर हुए। इसका उद्देश्य था- अंग्रेजी संस्कृति की श्रेष्ठता को स्थापित करना और इस प्रकार भारतीयों को अपने सहज जीवन को हीन मानने की भावना घर कर गई। 1854 में वूड घोषणा पत्र के द्वारा शिक्षा नीति को और स्पष्ट किया गया परंतु इसमें प्रधान लक्षण यूरोपीय ज्ञान विज्ञान को ही केंद्र में रखना था और भारत में अंग्रेजी शिक्षा का विस्तार था। उच्च शिक्षा के लिए सिर्फ अंग्रेजी को ही योग्य भाषा माना गया। लॉर्ड रिपन के समय में भारत में शिक्षा का व्यापक विस्तार हुआ परंतु उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी का प्रभुत्व कायम रहा। सामान्य नैतिक जीवन जीने की शिक्षा ही शिक्षा नीति का उद्देश्य था परंतु सरकारी विद्यालयों में धर्मग्रंथ बाइबल रखने की अनुमति थी। लॉर्ड कर्जन के समय में विश्वविद्यालय शिक्षा पर संगठित प्रयास हुआ परंतु भारतीयों का प्रतिनिधित्व इसमें कम रहा, फिर भी भारतीय शिक्षा पद्धति में संख्यात्मक और गुणात्मक सुधार के प्रयास किए गए और शिक्षा प्राप्त कर भारतीय नागरिक सरकारी नौकरियों से जुड़े जिससे भारत के विकास में उनका योगदान हुआ।

शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य अपने आसपास के वातावरण को भली प्रकार से जानना समझना और ऐसी सोच को बढ़ाना है जिससे विद्यार्थी में न सिर्फ कौशल और चातुर्य का विकास हो बल्कि वह उसके स्वस्थ सामाजिक संबंधों और व्यक्तिगत विकास के भी अनुकूल हो। इसी उद्देश्य से 1835 के भारत सरकार अधिनियम के पारित होने के बाद जब प्रांतीय सरकारें बनीं तो महात्मा गांधी द्वारा बेसिक शिक्षा का दर्शन आधुनिक काल की एक बड़ी घटना थी। गांधीजी ने प्रांतीय सरकारों से 7 से 14 वर्ष के बच्चों की शिक्षा का भार अपने ऊपर लेने को कहा और इसमें अंग्रेजी को छोड़कर वे सभी विषय पढ़ाने की बात की गई जो बच्चों के विकास के लिए आवश्यक है। अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन वर्धा में महात्मा गाँधी ने प्राथमिक शिक्षा के लिए ऐसे सुझाव दिए कि वह शिक्षा बच्चे को उसकी स्थानीय जरूरत के हिसाब से मजबूत बनाए और साथ ही विद्यार्थी परिवार और समाज का एक संतुलित संबंध कायम हो। इसमें कृषि और भारतीय हस्त कौशल की शिक्षा का प्रवेश कराकर गाँधीजी शिक्षा को स्वावलंबी

बनाना चाहते थे। इस प्रकार बेसिक शिक्षा एक ऐसी शिक्षा थी जिसमें ना सिर्फ विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास होता था बल्कि यह उसके जीवन की समस्याओं को सुलझाने वाली भी थी। महात्मा गाँधी की शिक्षा में श्रम के प्रति जो सम्मान का भाव था यह समाज के लिए बड़ा ही क्रांतिकारी था परंतु अंग्रेजी सभ्यता की चकाचौंध में हमने इसकी उपेक्षा की जो समाज की समरसता के लिए अच्छी नहीं थी। गाँधीजी मनुष्य की मनोदैहिक समस्याओं से पूर्ण रूप से परिचित थे परंतु आधुनिक शिक्षा इन मनोदैहिक समस्याओं को उपेक्षित कर रही थी और इससे किसी प्रकार का चारित्रिक और नैतिक विकास भी नहीं हो रहा था। साथ ही समाज के अनुकूल भी शिक्षा नहीं थी और एक बड़े स्तर पर स्वावलंबन के विपरीत जा रही थी। शैक्षिक व्यवस्थाएँ स्वावलंबन के बिना सरकार पर बोझ बनती जा रही थी। गाँधीजी शिक्षा के क्षेत्र में श्रम के जिस दर्शन को स्वीकार करते थे उसे अंग्रेजी शिक्षा में हीन माना गया जबकि गाँधीजी का पूरा दृष्टिकोण गाँव में स्वराज्य लाने का, उसे सशक्त बनाने का था। आजाद भारत प्रगति के जिस पथ पर चल पड़ा था वहाँ गाँधीवादी दर्शन की कुछ सीमाएँ आ जाती है इसलिए गाँधी जी की वर्धा योजना असफल हो गई क्योंकि इसमे बहुत कड़े धैर्य की परीक्षा होती है।

स्वतंत्रता के बाद भारत को अपनी खुद की शिक्षा नीति और योजना बनाने का स्वर्णिम अवसर मिला राधाकृष्ण कमीशन में विश्वविद्यालय शिक्षा के विस्तार पर, शोध पर, अध्यापकों की गुणवत्ता पर और ज्ञान आधारित समाज के लिए अच्छी योजनाएँ बनी। अब हम अपने राष्ट्र को अपने हिसाब से आकार दे सकते थे। भारत में मौजूद विषमताओं से जूझना भी शिक्षा नीति के समक्ष बड़ी कठिनाई थी। समतामूलक समाज का आदर्श और शिक्षा की गुणवत्ता के लिए मानक तय किए जाने थे और इसके लिए स्वतंत्र भारत में माध्यमिक शिक्षा आयोग मुदलीयर कमीशन में नई योजनाएँ प्रस्तुत की गई। इसी के तहत माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन किया गया इसने स्पष्ट किया कि हमारे विद्यालय में विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं परंतु उससे उन्हें दैनिक जीवन में कोई अंतर्दृष्टि प्राप्त नहीं हो रही थी, न ही यह पाठ्यक्रम क्रियात्मक था। इस प्रकार विद्यार्थियों और अध्यापकों दोनों की ही औसत कुशलता में कमी आयी थी। जो एक बहुत बड़ी चिंता का विषय था। स्वतंत्र भारत में यह भी स्पष्ट कर लिया गया कि शिक्षा में राष्ट्रीय तत्त्व के साथ स्थानीय तत्त्व भी होने चाहिए इसलिए भारतीय नेताओं ने शिक्षा को समवर्ती सूची में डाला और माध्यमिक शिक्षा द्वारा उसके गुण दोषों की समीक्षा की गई। विस्तृत प्रशासकीय और वित्त योजना के कार्यक्रम बनाए गए। बहुउद्देश्यी विद्यालयों की स्थापना भी 1964 में की गयी। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग जिसे कोठारी कमीशन के रूप में भी जाना जाता है, गठन किया गया। इसका उद्देश्य पूरे देश के लिए समग्र शिक्षा नीति को प्रस्तुत करना था और उसने अपने प्रतिवेदन का शुभारंभ इस वाक्य से किया कि देश का विकास उसकी कक्षाओं में निर्मित हो रहा है। एनसीईआरटी को अखिल भारतीय स्तर पर विद्यालय शिक्षा का भार सौंपने का सुझाव हुआ। सामाजिक नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के साथ विश्वविद्यालय शिक्षा और उस क्षेत्र में कृषि और औद्योगिक शिक्षा को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया और भारत में 14 वर्ष तक के बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की बिना भेदभाव की व्यवस्था करने का सुझाव दिया गया। 2005 से 2008 के बीच भारत में राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य ज्ञान की मौजूदा प्रणालियों में बड़े स्तर पर सुधार करके 21वीं सदी के अनुकूल भारत को तैयार करना था। इसमें सूचना और संचार तकनीकों के इस्तेमाल पर जोर दिया गया जिससे दुनिया भर की ज्ञान प्रणालियों के बीच संपर्क और आदान-प्रदान का तंत्र स्थापित हो। ज्ञान आयोग ने शिक्षा के विस्तार और गुणवत्ता के साथ-साथ उच्च शिक्षा में समावेश के लक्ष्य को भी शामिल किया और दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के जरिए एक नया मंच उपलब्ध कराया इस प्रकार सकल नामांकन अनुपात को बढ़ाना भी हमारी उच्च शिक्षा का उद्देश्य बना।

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मसौदे से लेकर नई शिक्षा नीति 2020 तक हम स्पष्टतः यह जान चुके हैं कि वैश्वीकरण के इस युग में प्राचीन ज्ञान-विज्ञान से ही हम अपनी व्यष्टिता को दर्शा सकते हैं तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर नवीन ज्ञान विज्ञान की कसौटी पर भी हमें परीक्षा देनी होगी। अब शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक विकास के साथ राष्ट्र को अग्रिम पंक्ति में रखना भी है। राजनैतिक स्वतंत्रता होने पर ही हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति के माध्यम से अपनी आर्थिक प्रगति सुनिश्चित कर सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण कर सकते हैं। स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव इस स्वतंत्रता के मूल्य के प्रति हमें जागरूक बना रहा है। ❑

भारत का आदि साहित्य वेद है। वैदिक कालीन शिक्षा के मुख्य उद्देश्य में सदाचार, ईश्वर के प्रति आस्था, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक और सामाजिक कर्तव्य का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति के साथ आत्मविकस की पूर्णता थी। शिक्षा को ज्ञान के पर्याय के रूप में ही लिया जाता था और ज्ञान के विकास के साथ ही मानवी जीवन में स्वास्थ्य, जीविकोपार्जन और कला कौशल की शिक्षा भी दी जाती थी। बौद्ध धर्म के राज्य के केंद्र में आने पर शिक्षा का स्वरूप वैदिक शिक्षा से भिन्न एक सामान्य जन शिक्षा के रूप में आया परंतु तब भी नैतिक और चारित्रिक शिक्षा तथा कला कौशल का ज्ञान राज्य के प्रमुख सरोकार थे।

भारतीय भाषा, साहित्य और कलाएँ

प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल
पूर्व निदेशक,
मध्य प्रदेश शासन,
साहित्य अकादमी,
भोपाल (म.प्र.)

भारतीय कलाएँ 'चतु:षष्ठि कलान्वितं परमेष्ठिना परिवर्धितम्' हैं। इन चौंसठ कलाओं की युति, कला साधकों को प्रेरित करती है। इस दृष्टि से भारतीय कला की विशेषता है कि उसमें नाना कलाओं को एक संश्लिष्ट-समग्रता में देखा गया है।

कलाओं का यह अन्त: संबंध संरचनात्मक है और सामाजिक भी। यह विषय बहुत मौजूं है। आह्लादक है। आवर्जक है। अविकारी है। आकर्षक है। खींचता है। हमारे विचारों का विरेचन भी करता है। इसीलिए भर्तृहरि ने कहा -

साहित्य-संगीत-कला-विहीन:
साक्षात्पशु: पुच्छविषाणहीन:।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्-
भागधेयं परमं पशूनाम्।।

अर्थात् साहित्य संगीत और कला से विहीन मनुष्य पूँछ और सींग रहित पशु के समान है, केवल अंतर इतना ही है कि बिना घास खाए जीवित रहता है और यह पशुओं के लिए सौभाग्य की बात है। जहाँ तक कला तत्त्व की बात है, तो संप्रेषणीयता ही कला का होना है। यही कला का बीजतत्त्व है। उसकी गति है। विस्तार है। सार्वजनीनता है। लोक-व्याप्ति है। जन-आह्लादकता है और इसकी निष्पत्ति तथा उसके साधारणीकरण का मूलाधार भी। संप्रेषणीयता ही कला को परमतत्त्व की ओर ले जाकर आनन्दित करती है। जैसा कि कहा गया है -

विश्रान्तिर्यस्य-सम्भोगे
सा कला न कला परा।
लीयते परमानन्दे ययात्मा
सा परा कला।।

तात्पर्य यह कि जिस कला में भोग की विश्रांति है, वह कला, कला नहीं है, बंधन है, परंतु जिस कला का लक्ष्य परमतत्त्व की ओर ले जाकर आनंदित करना है, वही कला है। 'कला' में 'क' 'ला' युगपद् भावी और स्व अर्थी है। 'क' का अर्थ है 'क' सुख और 'ला' का अर्थ है - लाति।

अर्थात् जो सुख प्रदायिनी है, वह कला है। आनंद विरहित-निर्माण कला हो ही नहीं सकती। कला तो कं लाति ददातीति है।

इसका मूलाधार है सौंदर्य। इस सौंदर्य-सृष्टि में परम सत्य की खोज करना ही कला का परमोद्देश्य है। कलाबोध एक दैव- दृष्टि है। व्यक्ति का हृदय जितना विकार रहित, समभावी और सहज होगा, उसका कलाबोध उतना ही व्यापक होगा। कला से तात्पर्य केवल रेखाओं, आकृतियों एवं तूलिकाओं से ही नहीं है, अपितु सर्व के प्रति सौंदर्यबोध से है। इसका संबंध आंतरिक शुचिता से भी है और आध्यात्मिकता से भी। कला हमें खींचती है, मुदित करती है। एक दैवीय भाव जगाती है। इसीलिए काव्य के सौष्ठव-पक्ष को हम कला-पक्ष भी कहते आए हैं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है हमारी परंपरा की चौंसठ कलाएँ। विश्व की किसी भी मानव-सभ्यता के पास इतनी विविधवर्णी और बहु-विषई कलाएँ हैं ही नहीं। यद्यपि साहित्य के अंतरावलंबन में ललित कलाओं को साहित्य के अंतर्गत परिगणित करने से परहेज किया गया है। परंतु व्यापक अर्थ में सभी कलाएँ साहित्य में अन्तर्भावी हैं। हमारी साहित्य-परंपरा बहुविषयिणी है। संगीत, कला एवं दर्शन इसके प्राण-तत्त्व हैं। संगीत इसका ऊर्ध्वचेतस भाल है, तो कला इसका हृदस्पंद और दर्शन इसकी छवि है। इधर लिखा जाने वाला साहित्य इन सबसे रहित होकर ठूंठ होता जा रहा है। यही कारण है कि आज साहित्य समाज के केंद्र से च्युत होता जा रहा है। हम अपने साहित्य के ऐसे संजीवन-तत्त्वों को भूलते जा रहे हैं। जयदेव के गीत गोविंद और विद्यापति के पदों में साहित्य-आस्वाद्य का जो रसमाधुर्य था, उसे हम भूलते जा रहे हैं। विश्व में ऐसा कोई देश है ही नहीं जो भारत जैसी चौंसठ कलाओं का समन्वय लेकर चलता हो। तब हमें उन्हें क्यों विस्मृत कर देना चाहिए?

कला मनुष्य के अंत:करण के भावों की स्वत:स्फूर्त अभिव्यक्ति तो है ही, आनंदानुभूति के स्फुरण का कारक भी है। मनुष्य के अंतस की जीवित सृष्टि है। मानव के सौंदर्यात्मक सृजन की प्रेरणा है। भारत को यह गौरव प्राप्त है कि उसके पास ऐसे विशिष्ट शास्त्र हैं जो नर-नारी को उसकी जीवन-यात्रा में जीवंत बनाए रखने का पाथेय प्रदान करते हैं। महनीय स्तर तक शिक्षण प्रदान करने वाला यह उद्यम विलक्षण और अपूर्व है। मानवता से अनन्य प्रेम करने वाले ऋषियों का गंभीर चिंतन और तल्लीनता उनकी उस धारणा को पुष्ट करती है कि मनुष्य की चाहे जो भी आकांक्षाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ हों, उनमें कलात्मक परिपक्वता अनिवार्यत: होनी चाहिए। भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में यह महत्त्वपूर्ण है कि उसके वैविध्यपूर्ण क्रिया-व्यापार में उसकी अस्मिता को प्रांजलता प्रदान करने वाला वैभव प्रकट हो। यह वैभव हमारे शास्त्रों में, कामसूत्र जैसे ग्रंथ में संग्रथित है। नारी के लिए चौंसठ कलाओं का विवेचन हुआ है। कलाएँ प्रेमाभिव्यक्ति की साधिका हैं। नारी को आनंदपूर्वक जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

कला-चेतना के सूत्रों के परिप्रेक्ष्य में कामसूत्र मात्र काम-कला के चिंतन और वक्तव्य तक सीमित है नहीं, अपितु वह समस्त ऐंद्रिय हुलास को आदर्श के रूप में व्यापक रूप से प्रस्तुत करता है। यह काम पारस्परिक प्रेम-व्यापार को नैसर्गिक और प्रकृतित: ईश्वरोन्मुख चित्रित करता है। इसीलिए हमारे यहाँ कहा गया है कि 'कामस्तादाग्रे जगति: प्रतिष्ठा अर्थात् काम के मूल में जगत की प्रतिष्ठा है। उदाहरणत: दुष्यंत ने शकुंतला का वरण किया तो वह नि:संतान होने के कारण अपना उत्तराधिकारी पाने के लिए; न कि शुद्ध कामोपभोग के लिए।

भारतीय कला में हस्त-कौशल, बौद्धिक वैभव, हार्दिक सौंदर्य और आत्मिक आनंद का भव्य मणिकांचन संयोग और संस्पर्श है। देव-मंदिरों, प्रासादों, स्तूपों, चैत्यों, विहारों में अंकित शिव, विष्णु, सूर्य, बुद्ध और महावीर की प्रतिमाओं में अनुप्राणित-जीवन मनुष्य के आत्मिक-आनंद और ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति है। अजंता की कला-वीथियों, चैत्य, योगिनियों के प्रस्तर फलक, खजुराहो की उत्कीर्ण बोलती प्रतिमाएँ मानव के अंतस् की सौंदर्य चेतना, अभिभूमि और अभिव्यक्ति हैं, जो मानव-मन में अवस्थित प्रेम के अजस्र, अगाध स्रोत की परिचायक हैं। इसी संदर्भ में मध्यप्रदेश के मंदसौर स्थित भावोपन्न अष्टमूर्ति भी उल्लेखनीय है, जो कई वर्षों तक भूमि में छुपाकर रखी गई थी ताकि विधर्मी उसका भंजन न कर दें। ऐसी भावोपन्न कला-प्रतिमा विश्व की दुर्लभ प्रतिमाओं में से एक है। कालिदास ने अभिज्ञानशाकुंतलम् के मंगलाचरण में जिस अष्टमूर्ति का स्मरण किया है, वह यही मूर्ति हो सकती है।

वस्तुतः कला भारतीय संस्कृति का वह वैभवी पक्ष है, जो भारतीय मनीषा के उत्कृष्ट चिंतन-मनन से निःसृत दर्शन और साहित्य का सर्जनात्मक निदर्शन है और उसकी सौंदर्योपासना और सृजन के अनंतर अनुभव होने वाले आनंद की अभिव्यक्ति भी। वस्तुतः भारतीय मनीषा के लिए सृजन आत्मिक आनंद और अजस्र सौंदर्य-दर्शन का अथक व्यापार है। वह इसे कला के रूप में संज्ञित करता है। स्पष्टतः उसके लिए कला विस्तीर्ण और व्यापक फलक का वाचक है। इसकी परिभाषा देना भले संभव न हो, परंतु अनुभव-जगत् में अमूर्त को मूर्त रूप में देखना संभव है ही। इसे ही मल्लिनाथ ने 'द्योतितार्था तु पश्यंती' कहा। बैखरी और मध्यमा से परा वाणी की ओर गमन करते हुए पश्यंती के रूप में निरूपित किया है।

भारतीय वैयाकरणीय प्रक्रिया के अनुसार 'कला' शब्द का व्युत्पत्ति के आधार पर अर्थ लगाने का यत्न किया गया है। तदैव उसे 'कल्' धातु से निष्पन्न बताते हुए पाणिनीय धातु-पाठ में 'गति' और 'संख्यान' के अर्थ में ग्रहण किया गया है। इसका तात्पर्य है कि 'कला' वह लोकोत्तर सृजन की प्रक्रिया है जिसके द्वारा कलाकार एवं सहृदय की चेतना संकीर्ण भौतिक धरातल से रसास्वाद या आनंद की लोकोत्तर अवस्था में गमन करती है। यह मनुष्य को लोकोत्तर आनंद प्रदान करती है।

कला-विषयक विचार को सर्वप्रथम शब्द देने वाला वाङ्मय ऋग्वेद है। इसकी उक्ति है 'यथा कला यथा शक्तं यथा ऋणं संनयायसि।' स्पष्टतः कला पूर्ण-पुरुष और उसकी सृष्टि की परमाणुक अभिव्यक्ति है। कदाचित् इसीलिए भवभूति कहते हैं 'वंदेमहि च तां वाणीममृतात्मनः कलाम्।' तात्पर्य यह कि कला आत्मा की वाणी है; अमृतमयी वाणी है और इसीलिए वे उसकी अभ्यर्थना, वंदना करते हैं। तुलसी मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणी विनायकों में कला की इसी ईश्वरीय रूप में अभ्यर्थना करते हैं। आगे यह स्पष्ट किया जाएगा कि वाणी के साथ-साथ वैनायिकी भी चौंसठ कलाओं में से एक है। कला की सुंदर, सुष्ठु और सर्वांग व्याख्या छांदोग्य उपनिषद् में उपलब्ध है, जो इस जगत् को ही ब्रह्म की कला के रूप में वाच्य बनाती है; यथा प्राची दिक्कला, प्रतीची दिक्कला दक्षिणा दिक्कलोदीची दिकलैव वै सौभ्य चतुष्फलः पादो ब्रह्मणः प्रकाशवात्रम।

अर्थात् ब्रह्म के चार पाद प्रकाशवान्, अनंतवान, ज्योतिष्मान् और आयतनवान् हैं और क्रमशः कलाओं से प्राणवान् हैं। (छांदोग्य उपनिषद् 4, 5,3, 3, 4, 8)

आचार्य भरत ने 'न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला' कहा है। भर्तृहरि ने 'साहित्य संगीत कला विहीनः' कहकर कला को साहित्य और संगीत से पृथक माना है। भामह ने काव्यालंकार (1.2) में वैचक्षण्यं कलासु च कलाओं में निपुणता का संकेत किया है। दंडी ने काव्यादर्श में 'नृत्यगीतप्रभृतयः कलाः कामार्थसंश्रयाः' (3.162) साहित्य को कला से भिन्न स्वीकार किया है। फिर भी कला मंगलास्पद है। यह शिवत्व की उपलब्धि के लिए सत्याभिव्यक्ति है। शब्द और अर्थ दोनों ही कला एवं रसानुभव के लिए आवश्यक माने गए हैं -

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।

(रघु 1/1)

कलाभावानात्मक संतृप्ति देती है। यह तृप्ति समाधि दशा में ईश्वर का साक्षात् करने वाले ऋषियों की तरह प्रतीत होती है। कला के अपने आध्यात्मिक प्रतिमान होते हैं। भारतीय शास्त्रों ने मंत्र, यंत्र और तंत्र विज्ञान को कला मानकर उसकी उपासना का

विधान दिया है। वेदों में कला का उद्गम परमात्मा को माना गया है, हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे (श्र. 10/121/1) ब्रह्मांड रूप में गर्भ रूप से स्थित प्रजापति नानारूपात्मक जागतिक प्रपंच के उद्भव के पूर्व उत्पन्न हुआ (शरीर धारण किया)। परिणामतः परमात्म के सौंदर्य को जानना ही कला है।

उपनिषदों में कला का आधार आकाश को माना गया आकाशों वै नामरूपयोर्निर्वहिता ने यदन्तरा तद्ब्रह्म (छान्दीग्य उपनिषद् 8/14/1) बुद्धि प्रेरक परमेश्वर सब रूपों की रचना करके उनके नाम रखकर उन नामों के द्वारा स्वयं ही व्यवहार करता हुआ स्थित है। नामरूपे व्याकरवाणि सर्वाणि रूपाणि- विचित्य धीरो।

नाभानिकृत्वाभिबदन् यदास्ते

(छांदोग्य उपनिषद् 6/3/21)

ऐतरेय उपनिषद् में परमात्मा को लोक रचनाकार के रूप में बताया गया ऊँ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत्किञ्चन भिषत्।

सईक्षत लोकान्नुसृना इति अर्थात् जगत पहले एकात्म परमात्मा ही था। तद्रिक्त अन्य कोई चेष्टा करने वाला नहीं था। परमत्मा ने लोक-रचना का विचार किया।

स्कंदपुराण के अनुसार सभी कलाएँ विश्वकर्मा में निहित है (4/86 अ.)। विश्वकर्मा को 'शिल्पानां वरः' तथा 'कलाविदां वरः' कहा गया है। वामनपुराण में कलाषु मुख्या गणितज्ञाता च विज्ञजनमुख्यं (12/53) यहाँ गणित ज्ञान को श्रेष्ठ कला और इंद्रजाल को विज्ञान मुख्य कहा गया है।

कला मानसिक बिंब की सृष्टि है। महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है मनसैवकृता लंका निर्मिता विश्वकर्मणा - अर्थात् विश्वकर्मा ने लंका निर्माण में अपने मन को ही प्रतिविंबित किया। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है -

यद् यद् विभूतिमत्सत्त्वंश्रीमदूर्जितमेववा।
तत्तदेवावगच्छत्वं मम तेजोऽंश-संभवम्।।

अर्थात् सौंदर्य का जो भी रूप है वह मेरे द्वारा ही उत्पन्न है। मेरे ही तेज से जो देवता जाने जाते हैं वे सभी मेरे कारण ही विराजमान हैं। कला नियमों से मुक्त होती है, ऐसा मम्मट कहते हैं। नियतिकृत नियमरहितामह्लादैकमयीमनन्यपरतंत्राम्। कालिदास ने 'रूपोच्चयेन विधिना मनसा कृतानुः' मानसिक सृष्टि को भगवान की सृष्टि माना है।

रस ही कला का प्राण है। उपनिषद् का वचन है 'रसो वै सः। रसंह्यवायं लब्धानन्दी भवति' अर्थात् वे रस रूप हैं, इसी रस की उपलब्धि कर मनुष्य को आनंद प्राप्त होता है।

'कला' अर्थ है गति और संख्यान, संख्यान का अर्थ है - पर्यवेक्षण, सूक्ष्म निरीक्षण, मनन चिंतन, अंतर्दर्शन एवं सम्यक् अभिव्यंजन। इस अर्थ में कला मानवीय भावों की शिवात्मक एवं शोभन अभिव्यक्ति है। भारतीय संगीत का मूल स्रोत अनहद नाद है। परम तत्त्व का सूक्ष्म में स्थूल रूप में बहिर्गमन (प्रगटीकरण होना) और फिर पुनः स्थूल से सूक्ष्म रूप में प्रत्यावर्तन होना ये कार्य एक तालमय लयबद्धता में होते हैं जिसको अनाहद नाद कहते हैं। इसका मूलाधार है कहा है। पद्म पुराण ध्यान और अर्चन। इसीलिए अभिनवगुप्त वे 'देवानां यजनम' में भगवान श्रीकृष्ण स्वयं महर्षि नारद से कहते हैं -

नाहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदये न च।
मदभक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

कला मनुष्य के अंतःकरण के भावों की स्वतःस्फूर्त अभिव्यक्ति तो है ही, आनंदानुभूति के स्फुरण का कारक भी है। मनुष्य के अंतस की जीवत सृष्टि है। मानव के सौंदर्यात्मक सृजन की प्रेरणा है। भारत को यह गौरव प्राप्त है कि उसके पास ऐसे विशिष्ट शास्त्र हैं जो नर-नारी को उसकी जीवन-यात्रा में जीवंत बनाए रखने का पाथेय प्रदान करते हैं। महनीय स्तर तक शिक्षण प्रदान करने वाला यह उद्यम विलक्षण और अपूर्व है।

गायन

इसी प्रकार भावभूमि पर सहज प्रबोधन शक्ति युक्त होने के कारण ही संगीत बाद में रस सिद्धांत से जुड़कर भारतीय कलाबोध के सिद्धांत से जुड़ गया।

संगीत शब्द धातुज है - गै+सम् (उपसर्ग)। सम का अर्थ सम्यक भलीभाँति, यथायथ, जैसा होना चाहिए (ठीक वैसा) इस प्रकार इसका अर्थ होगा के सहित अर्थात् अंगभूत क्रियाओं (नृत्य) एवं वादन के साथ किया हुआ कार्य संगीत कहलाता है। संगीत रत्नाकर में कहा गया है गीतं वाद्यां तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते- अर्थात् गीत, वाद्य, नृत्य तीनों मिलकर संगीत कहलाते हैं। तीनों स्वतंत्र होते हुए भी गायन के अधीन वादन तथा वादन के के अधीन नर्तन माना गया है -

नृत्यं वाधानुगं प्रोक्तंबाधं गीतानुवृत्ति च।
अतौ गीतप्रधानत्वा प्रयमत्राभिधीयते।।

भारतीय संगीत का ऐतिहासिक विकास सिंधु घाटी सभ्यता में प्राप्त वीणा, हड्डी की वंशी तथा अन्य वाद्य यत्रों से माना जाता है। अभिनवगुप्त के अनुसार साम से गांधर्व तथा गांधर्व से गान उपजा गांधर्व हि सामभ्यस्तस्माद्धवं गानम् - अभिनवभारती 28.9 गांधर्व गायन के उद्भव के विषय में नाट्यशास्त्र में कहा गया है -

अस्य योनिर्भवेद गानं
वीणा वंशतथैव च।
एतेषां चैव वक्ष्यामि
विधिं स्वर समुत्थितम्।।

अर्थात् इसका उद्भव गान, वीणा तथा वंश से हुआ है बाद का गान (नाट्य संगीत) नहीं था परंतु विभिन्न उत्सवों में लोक - नाट्यशास्त्र 28/10। यहाँ गान का अर्थ संगीत जो होता था वह उसमें जुड़ गया। वीणा का अर्थ दारवी वीणा से है, जो वैदिक काल में महाव्रत अनुष्ठान में प्रयोग में लाई जाती थी। औदुंबरी वीणा के इस प्रयोग में भी लोक का प्रभाव था। वंश का अर्थ संगीत के आचार्यों की परंपरा से था। जैसे नारद आदि। गांधर्व संगीत में लोककला का प्रभाव उसके ताल में भी था। नाट्यशास्त्र के अनुसार गान्धर्वमिति तज्ज्ञेयम् स्वरतालवदात्मकम् (नाट्यशास्त्र 28/8)।

यहाँ स्वर का संबंध शारीरी वीणा (मानव कंठ) तथा दारवीवीणा (काण्ठ वीणा) दोनों से था।

भारतीय संगीत में स्वरशास्त्र पर बहुत विस्तार से चर्चा हुई है। स्वरों के उस समूह को जिससे राग उत्पन्न होता है, थाट कहते हैं। एक सप्तक में 12 स्वर होते हैं। जिसमें चुनकर थाट बनते हैं। थाट गाए नहीं जाते अपितु उनसे उत्पन्न रागें गाई जाती हैं। उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में 32 थाटों में 10 ही प्रचलित हैं। कल्याण, बिलावल, खमाज, भैरव, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, भैरवी, और तोड़ी।

दशरूपक में धनंजय कहते हैं – **अन्यभाषाश्रयंनृत्यम् तथा नृत्रं ताललयाश्रयम्।** अर्थात् नृत्य अन्य भावाश्रित होता है जबकि नृत्त ताल और लयाश्रित होता है।

कला की चरम अनुभूति में कुछ समय के लिए मनुष्य को अपनी शुद्ध चेतना से साक्षात्कार होता है। यही संविद विश्रांति कहलाती है। भरत के नाट्यशास्त्र में तीन प्रकार के नृत्य तांडव, लास्य तथा पिंडी बंध बतलाए हैं। शिव के आदेश पर तंडु द्वारा भरतमुनि को सिखलाया नृत्य तांडव हैं। ऋग्वेद में इंद्र के संदर्भ में नृत्य का वर्णन आता है। इंद्र को नृतू भी कहा गया है (1/130)। सामवेद में मार्गी तथा देशी संगीत और नृत्य का वर्णन है जो शास्त्रीय और लोकप्रिय शैलियों को बतलाते हैं। रामायण, महाभारत रामायण, महाभारत में नृत्य के अनेक संदर्भ हैं। पाणिनि भी नर्तक तथा नाट्य में भेद करते हैं। कौटिल्य गीत, वाद्य, नर्तन, नाट्य सभी का वर्णन करते हैं। पुराणों में नृत्य का प्रभूत वर्णन है। इस प्रकार भारतीय संगीत की नृत्य परंपरा सामाजिक, दार्शनिक, धार्मिक तथा सौंदर्यबोध के सभी पक्षों के लिए एक समृद्धण परंपरा का द्योतक है। भारतीय भाषाचिंतन पूरे विश्व का आधार है अनेक पश्चिमी भाषाचिंतकों, भाषाचिंतन का गोमुख है। मेरे इस कथन का वह कथन जिसमें उन्होंने भारतीय – भाषाचिंतन की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है ब्लूमफील्ड ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक भाषा (लैंग्वेज) में कहा है 'पाणिनि' मानव-मेधा के उच्चतम स्मारक हैं। इसी प्रकार से चॉम्स्की, किपास्की और फिल्मोर आदि ने अपने भाषाचिंतन का आधार भारतीय भाषाचिंतन को माना है। भारतीय भाषाचिंतन में भाषा पर विचार उसके उत्पन्न होने के पूर्व (गर्भस्थ रूप में) विचार किया है, जबकि पश्चिम में भाषा का विश्लेषण उसके व्यक्त स्वरूप का किया जाता है।

ऋग्वेद में वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्रमण्डुका अवादिषु (ऋ.7/103/1) कहकर अचेतन बादल चेतन मेढ़क की वाणी (वाचम्) या ध्वनि का वर्णन किया है। यास्क ने दुन्दुभिः इति शब्दानुकरणम (निरूक्त, 9/12) काक इति शब्दानुकृतिः, तदिदं शकु मिषु बहुलम (निरूक्त 3/18) कहकर स्पष्ट ही भाषा में अचेतनों तथा चेतनों की बोली का योगदान स्वीकार किया है। पाणिनि ने व्यक्तवाचां समुच्चारण (अष्टाध्यायी 1/3/48) से मनुष्यों की व्यक्त वाणी का वर्णन किया है, अनुकरणं चिनिति परम् (अष्टा. 1/4/62) से खाट्कृत, हुंकृत आदि शब्द चेतन वाणी के अनुकरण में और अव्यक्तानुकरणाद्द्वय जवरार्धादनितौ डाच् (अष्टा. 5/4/57) तथा लोहितादि उभ्यः क्यष् (अष्टा. 3/1/13) की सहायता से खटखटायते, पटपटायते, कटकटायते, टकटकायते, फर्फरायते आदि सैकड़ों प्रयोग अव्यक्त ध्वनि के अनुकरण में बताए हैं। अव्यक्तानुकरणस्यात् हतौ (अष्टा 106 /1/98) से भी पटिति, झटिति आदि प्रयोग अव्यक्त ध्वनि के ही अनुकरण में सिद्ध होते हैं। भाषा के अध्ययन के लिए शिशुओं की भाषा को भारतीय मनीषी भी उपयोगी मानते थे, अतः इसका भी यत्र-तत्र वर्णन मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण के सारस्वतं शंसति, तस्मात् कुमारं जातं जघन्या वागाविशति (ऐ.ता.11/3) तथा ऐतरेय आरण्यक के **एतां वाचं प्रजापतिः प्रथमां वाचां व्यवहरदेकाक्षरद्वयक्षरां ततेति तावेति, तथैवेतत् कुमारः प्रथमवादी वाचं व्याहरत्येकाक्षरद्वयक्षरां ततेति तातेति** (ऐ. आ. 1/3/3 तथा 1/3/7) में भी यही वर्णन है कि पहले बालक होने के अतिरिक्त कोई शब्द नहीं करता, मूक बना रहता है, यद्यपि उसमें मध्यमा वाक् अर्थात् चिंतन अवश्य बना रहता होगा। क्रमशः उसे अंतिम वाणी वैखरी प्राप्त होती है, उसमें भी एक दो अक्षरों (सिलेबल) शब्द ही बोलता है – माँ, बाबा, दादा, नाना आदि।

आज के भाषाविज्ञानविद् केवल मानव की वाणी और वह भी श्रव्य बैखरी वाणी को ही अपने अध्ययन अनुसंधान का विषय बना तो हैं। किंतु, भारतीय चिंतकों ने एक ओर मानवीय वाणी के सूक्ष्म चिंतनात्मक अश्रव्य रूप (मध्यमा) का और दूसरी ओर मनुष्येतर वाणी का भी अध्ययन किया है। जब से मानव जाति है, मानव का मस्तिष्क है, मन है, तब से ही उसकी भाषा भी है। इसीलिए वागिति मनः (जै. उ. 4/22/11), **वाक् च मनश्च देवाना मिथुनम्** (ऐ.ग्रा. 5/23), **वाग्वै मतिः, वाचोहीदं सर्वं मुनते** (शतपथ 8/1/2/7) आदि के द्वारा ऋषियों ने मन, बुद्धिवाणी की एकता बताई है।

भर्तृहरि ने भी **अभेदमान्तरं ज्ञानं सूक्ष्मवागात्मना स्थितम् व्यक्तये स्वस्य रूपस्य शब्द वेन विवर्त्तते** (वाक्य.1/113) तथा **न सोडस्ति प्रत्यये लोके यः शब्दानुगमाद् ऋते, अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते** (वाक्य. 1/117) कहकर ज्ञान और शब्द को एक रूप माना है तथा यह प्रमाणित किया है कि शब्द के अभाव में कोई चिंतन, कोई ज्ञान नहीं हो सकता।

भारतीय भाषा चिंतको के अनुसार वाणी के चार स्तर होते हैं इसका सूक्ष्मतम पस्पष्ट रूप मूलचक्र के पास से उठता है, फिर वह नाभि के पास आकर। अर्धस्पष्ट या सूक्ष्मतर रहता है। वहाँ से उठकर वह हृदय प्रदेश में पहुँचता है, जहाँ वह और भी स्पष्ट हो जाता है तथा सूक्ष्मतर से स्थूल बनता है। उसके बाद प्राणवायु के संसर्ग से वह स्थूलतर हो कंठप्रदेश में पहुँचकर पूर्णस्पष्ट तथा स्थूल बन जाता है। मानव वाणी के ये चार रूप क्रमशः सूक्ष्मतम, सूक्ष्मतर, सूक्ष्म, स्थूल अथ सूक्ष्म, स्थूल, स्थूलतर, स्थूलतम कहे जा सकते हैं। इन्हें ही क्रमशः परा, पश्यंती, मध्यमा, बैखरी कहते हैं। जैसा कि कहा गया है –

परा वाङ्मूलचक्रस्था,
पश्यन्ती नाभिसंस्थिता।
हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया,
बैखरी कण्ठदेशगा।।

परम लघुमंजूष का स्फोट विचार साहित्य तो मनुष्य-जीवन का सनातन तत्त्व है। यह सनातन क्या है ? इसे भी व्याख्यायित करना होगा। जो सदागतिशील रहने की सामर्थ्य रखता है और कालधर्म से पुनर्व्याख्यायित होता चलता है, वही सनातन है। परंतु पाखंडवाद के राहु और केतु ने इसे ग्रस रखा है। इससे अब साहित्य को उबारने का समय आ गया है। इसे उबारने वाला सुदर्शन चक्र है कला और संस्कृति। अपने समय में इसकी चिंता गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी की थी। इसीलिए उन्हें कहना पड़ा –

हरित भूमि तृन संकुल
समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बाद तें
गुप्त होहिं सदग्रंथ।। (कि. का. 14)

वर्तमान में साहित्य, कला और संस्कृति के लिए भी ऐसा ही कुछ खतरा है। इस खतरे से उबरने के लिए आज हमें सनातनी साहित्य के शाश्वतिक पक्षों की ओर झाँकना होगा। जो सदाशयी हो वह सनातनी है, जो मूल्यों से आवेष्टित हो वह सनातनी है। जिसमें सत्य, शिव और सुंदर को अविष्टित करने का गुणधर्म हो वह सनातनी है। और, जो 'जन', 'गण' और 'मन' को पूरी तरह से चरितार्थ करने की सामर्थ्य रखता हो वह सनातनी है।

सही अर्थों में साहित्य वह है, जो समष्टि में अपने को विसर्जित करने का संदेश देता है। जो व्यष्टि के अभिमान को पृथक करके समष्टि का गान करता है। साहित्य वह है जो लोक का स्वर बनने की ताकत रखता हो। यह ताकत जितनी अधिक होगी साहित्य-गंगा का पाट और व्यास भी उतना ही विस्तृत होगा। मैं अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' और निराला की 'राम की शक्ति पूजा' को इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण मानता हूँ। एक साहित्य हमें ज्ञान के पथ से अनुभव के पथ पर पहुँचाता है और एक साहित्य अनुभव के पथ से ज्ञान के पथ पर पहुँचाता है। जो साहित्य ज्ञान के पथ पर चलता है, वह ठहरता है, रुकता है और टकराता भी है, वहीं जो साहित्य अनुभव के पथ से आता है, वह सत्यानुभूति और सर्वमयता के अधिक निकट होता है। वही साहित्य जब स्नेह का लय बन जाता है, तब वह जनता का कंठहार बन जाता है। ऐसे साहित्य का समाज में सदैव समादर बना रहता है। उदाहरण के लिए श्रीमद्भगवद् गीता और रामचरितमानस का नाम लेना पर्याप्त होगा। ऐसे साहित्य को 'अप्रेमय' कहा गया है जो प्रमा के विषय से सर्वथा परे है। जहाँ पहुँचकर प्रमाण और प्रमेय दोनों की गति रुक जाती है। मनुष्य में देवता पृथिवी को स्वर्ग और जीवन को मंदाकिनी बनाने वाला साहित्य, भारतीय साहित्य है। मनुष्य में जब दैवत की प्रतिष्ठा होती है, तो उसका सर्वाचरण सामाजिक कल्याण के निमित्त ही होता है। इस भाव के उदय होने पर पृथिवी में स्वर्ग का सुख मिलता है और जीवन में आनंद की मंदाकिनी प्रवाहित होती चलती है।

आज का साहित्य अपसंस्कृति की चिताभस्म पर खड़ा है, उसे अब सुसंस्कृति की अमृत-ध्वनि से परिशुद्ध बनाना है। यही नहीं आज हमारा साहित्य औपनिवेशिकता के बौद्धिक संजाल से ग्रस्त है। परंतु शुभ यह है कि विश्व के साहित्य-जगत में से मसीही और मार्क्सवादी ये दोनों धड़े समाप्तप्राय हैं। आज विश्व-साहित्य अपने नवसंसृजन के लिए भारतीय सनातन साहित्य की ओर एकटक निहार रहा है। और हम हैं कि उनका अंधानुकरण कर रहे हैं। ऐसा इसलिए कि हमें अपनी अस्मिता का भान नहीं है। जिस दिन हमें अपनी इस क्षमता का भान हो जाएगा, उस समय हम विश्व-साहित्य में अनामिका पर स्थित हो जाएँगे। महर्षि अरविंद ने कहा था 'एक दिन आएगा जब भारतीय मस्तिष्क उस अँधेरे को झटक कर फेंक देगा, जो उसके ऊपर आ पड़ा है, जब वह दूसरे और तीसरे के लिए गए विचारों को ढोना और उसके अनुसार सोचना बंद करेगा और संपूर्ण स्वतंत्रता में अपने शास्त्रों पर सोच-विचार व निर्णय करने के अपने अधिकार का प्रयोग करेगा।'

साहित्य की व्युत्पत्ति 'हितेन सहितं साहित्यं' है। दधातोहिं (7-4-42) सूत्र से 'धा' को हि आदेश करने पर 'हित' शब्द का वाच्यार्थ है – धारण-पोषण करना या किया हुआ, भला करना; सुरक्षित रखना, पुष्ट करना, योग-क्षेम का निर्वाह करना। इसमें 'सम्यक हिः' इस व्युत्तपत्ति से 'पृषोदरादीन', 'यथोपदिष्टम्' (6/3/109) से रहित शब्द की सिद्धि होती है, जिसका अर्थ है – भली प्रकार से धारण-पोषण करने वाला, हितकारी, साथी बना हुआ, मिला हुआ, सत्य का प्रदर्शयिता और प्रदर्शक। 'हितेन सह' इस विग्रह में 'तेन सहेति तुल्ययोगे' (2/2/28) सूत्र से बहुव्रीहि समास, वोपसर्जनस्य (6/3/82) सूत्र से विकल्प से 'सह' को 'स' आदेश; 'प्रथमा निर्दिष्टं समासं उपसर्जनम्' (1/2/43) सूत्र से सह (स) के उपसर्जन संज्ञा, 'उपसर्जन पूर्वम्' (2/2/30) सूत्र से उपसर्जन संज्ञक सह (स) का पूर्व प्रयोग होने पर 'सहित' शब्द सिद्ध होता है।

'**सहितस्य भावः**' इस व्युत्पत्ति में 'हित' के 'त' में से अकार का लोप करने पर 'साहित्य' शब्द सिद्ध होता है, जिसका वाच्यार्थ है सम्यक् विधि से धारण-पोषण करने की भावना वाला, मेल-मिलाना, परस्पर अपेक्षा रखने वाले समान रूपों की क्रिया में अन्वय होना करना, हित-भला करना, सत्यपथ का प्रदर्शक होना।

अब विचारणीय यह है कि क्या हमारा साहित्य इस भाव-भूमि की संपूर्ति कर रहा है। उत्तर होगा 'नहीं'। तो हमारे लिए करणीय होगा कि हम साहित्य को समय और समाज के हित के साथ जोड़ने वाला बनाएँ। मेरी दृष्टि से साहित्य के दस लक्षण आवश्यक हैं –

समयं आवश्यकता मर्यादाश्च
समाजः सर्वात्ममानवाः।
समग्रं राष्ट्रं मूल्यं लोकश्च
दशकानि साहित्यस्य लक्षणम्।।

अर्थात् हमारा साहित्य समय धर्मी हो। आवश्यकता धर्मी हो। मर्यादा धर्मी हो। समाज धर्मी हो। सर्वात्म धर्मी हो। मनुष्य धर्मी हो। समग्र धर्मी हो। राष्ट्र धर्मी हो। मूल्य धर्मी हो। लोक धर्मी हो। इस प्रकार भारतीय कला, संगीत, भाषा और साहित्य का यह चतुष्क मनुष्य की चेतना को उर्ध्वमुखी बनाता है। यही उसकी इहलौकिकता है और पारलौकिकता भी। और यही नहीं, उसकी विश्रांति भी है। ❑

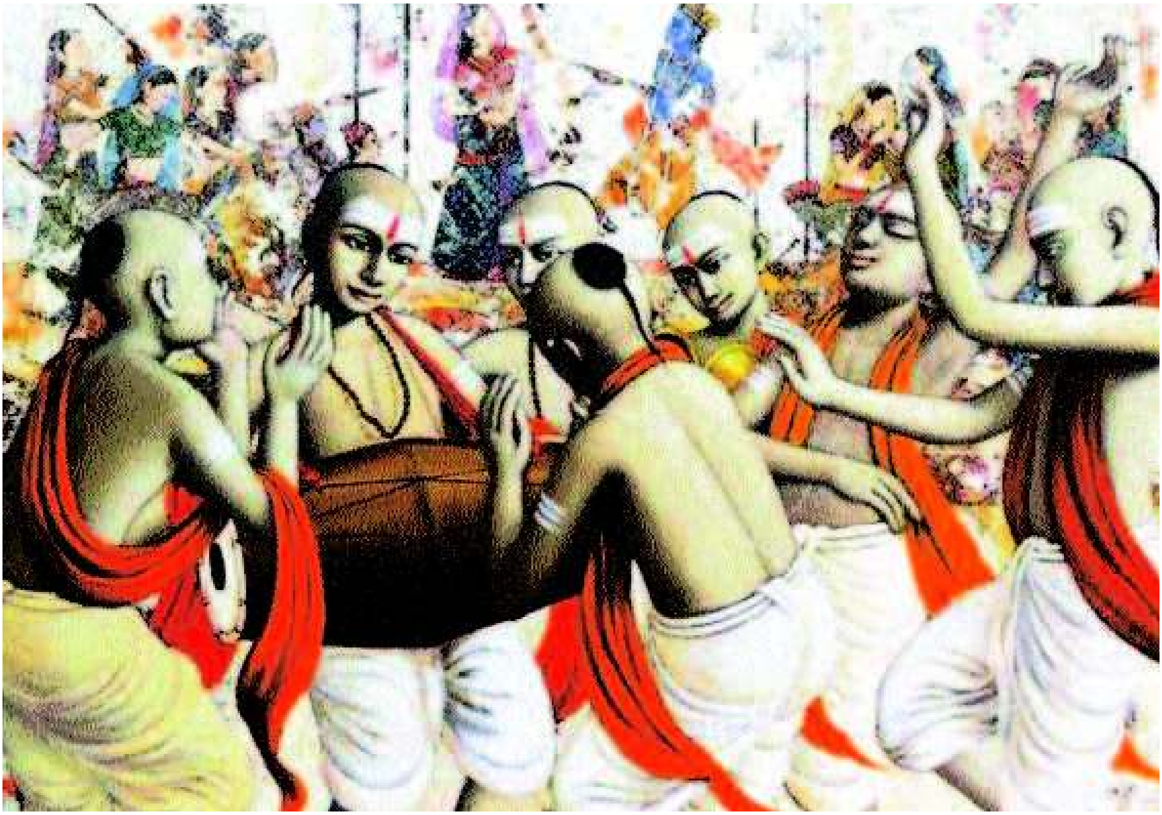

भारतीय कला, साहित्य की इतिहास-परम्परा

प्रो. सुधीर प्रताप सिंह
भारतीय भाषा केन्द्र,
जवाहरलाल नेहरू
विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

कला मनुष्य की विकास यात्रा की सबसे पुरानी साथी रही है। बात मनुष्य के कंदराओं में निवास की हो अथवा उसके शिकार के हथियारों की, सम्भवत: आदिम मनुष्य ने अपनी कला की आरम्भिक यात्रा इन्हीं जगहों और वस्तुओं से शुरू की, क्योंकि आदिम मनुष्य इनके साथ सबसे ज्यादा समय व्यतीत करता था। कहा जा सकता है कि कला से मनुष्य का सम्बन्ध आदिम है। ''कला का जन्म आत्माभिव्यक्ति की सहजात मानव कामना से, अथवा अपने आस-पास की वस्तुओं और स्थितियों से अपना मनोरंजन करने की सहज वृत्ति से, अथवा आत्मसुख प्राप्त करने की सहज वृत्ति से हुआ है।''

ऐतरेय ब्राह्मण में किसी कलाकृति के लिए दो शर्तें रखी गई हैं - कला आवश्यक रूप से कौशल से युक्त हो, कला आवश्यक रूप से छंद से युक्त हो।

कला की अनिवार्य शर्तों में कौशल का अर्थ उसकी कुशल क्रियाशीलता और उसका आकर्षण है, किन्तु कोई भी कला केवल कौशल से पूर्णता को प्राप्त नहीं करती इसलिए इसमें कौशल के साथ कला को 'छंदोंमय' अर्थात् लय, संतुलन, अनुपात और सुसंगति से परिपूर्ण माना गया है।

सभ्यता के विकास के साथ कला का विकास भी गहरे रूप से सम्बद्ध है। भारतीय सभ्यता जैसे-जैसे विकसित होती गई कला का रूप, उसकी मान्यताएँ और उससे अपेक्षाएँ भी क्रमश: बदलने और बढ़ने लगी। भारतीय कला का रूप जैसे-जैसे विकसित होता गया, कला को लेकर भारतीय चिंतकों की मान्यताओं में भी परिष्कार हुआ। कालान्तर में कला की शर्तों में किसी कलाकृति के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं था कि वह कुशलता और छंदों के नियमों के अनुसार सम्पन्न की गई हो, बल्कि उसके लिए यह भी आवश्यक हो गया कि उसमें बुद्धि लगी हो, वह संवेदनाओं और मनोभावों को आनंद पहुँचाये और हृदय में कोई भाव एवं अनुपम अनुभूति उत्पन्न करे। फलस्वरूप इन गुणों से सम्पन्न कलाओं को अद्वितीय कला और श्रेष्ठ कला का स्थान मिला।

भारतीय संदर्भ में कला और धर्म का

रिश्ता गहरे स्तर पर एक-दूसरे से सम्बद्ध रहा है। कई बार कलाएँ धार्मिक स्थलों से पनाह पाकर अपनी विरासत को लम्बे समय तक जीवित रख सकीं। इसके अलावा धार्मिक प्रभावों और भारतीयों की धर्म और सम्प्रदाय के प्रति गहरी आस्था ने भी धर्म और कला को एक-दूसरे से जोड़े रखा। भारत के कई समुदायों में कलाएँ जादू के रूप में काम करती थीं। जैसे- कबीलाई समुदायों में आज भी यह जादू से गहरे स्तर पर जुड़ा हुआ है। दूसरे रूप में कलाएँ मिथक और मान्यता प्राप्त प्रतीक का प्रतिनिधित्व करती थीं। कलाओं के माध्यम से भारतीय मिथकों ने शिष्ट और लोक के हृदय और स्मृतियों में जगह बनाई। कला के परिष्कार के साथ कला की मनोरमता बढ़ती गई। तीसरे रूप में विचारधारा को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए भी कलाओं का उपयोग किया गया। चौथे रूप में कला ने एक ऐसे यंत्र का काम किया ताकि किसी विचार या दृष्टि पर केन्द्रीयकरण हो सके। यह जरूरी नहीं था की कोई भी एक कला एक साथ इन सारे प्रयोजनों को पूरा करती हो, पर ये एक-दूसरे से पृथक नहीं थीं। इसके साथ यह भी सत्य है कि इन प्रयोजनों को पूरा करने का सबसे बेहतरीन साधन होने के बावजूद कला ने अपने कलात्मक सौन्दर्य को कभी कम नहीं होने दिया, इसलिए कलाएँ भारतीय जनमानस के जीवन का अभिन्न हिस्सा रही हैं।

धर्म के अलावा कलाएँ लोक जीवन से भी गहरे स्तर पर जुड़ी हुई थी। आम जन के घरों के दरवाजों, दीवारों और खिड़कियों पर उकेरे गए कलाचित्रों से यह साबित होता है, कि कलाएँ केवल शिष्ट जन का ही हिस्सा नहीं थीं बल्कि आम जन को भी कला से गहरा लगाव था। साहित्यिक साक्ष्यों से यह बात साबित होती है कि लोक में भी अधार्मिक तरीके से मनोरंजन के उद्देश्य से कलाओं का उपयोग होता था। लोग अपने जीवन के तनाव और थकान को दूर करने के लिए कलाओं के सानिध्य में जाते थे। इस प्रकार कला मानवीय क्रिया की उपज थी, जिसमें मनुष्य धार्मिक और लौकिक दोनों कारणों से कला के साथ गहरे स्तर पर जुड़ा हुआ था।

इसके अलावा कलाओं का एक हिस्सा राजदरबारों में जीवित था। यह कला का शिष्ट रूप था, जिसने अपने शाही संरक्षण से विभिन्न कला रूपों को समृद्ध और विकसित किया।

नीहार रंजन राय का कहना बिल्कुल सही है कि भारतीय कला कृतियाँ जिस भी सामाजिक-धार्मिक पंथ से सम्बद्ध हैं, वे उन कलाओं में उनके मानने वाले लोगों की सामूहिक इच्छा एवम् मानस, विचारों और सिद्धांतों, अभिरुचियों एवम् पसंदों को ही मुखरित करती हैं। भारतीय दृष्टि से कला वस्तु के तीन प्रमुख कार्य रहे हैं।

पहले स्तर में निम्न सतह पर कला इन्द्रिय और मन के लिए स्वयं को आकर्षक बनाती है। दूसरे स्तर पर कला का काम शुद्ध आनंद का अनुभव जागृत करना अर्थात् उच्चतर स्तर पर ले जाना है। तीसरे स्तर पर कला का काम मनुष्य के चरित्र में विचारपरकता ले आना है। यह कला का नैतिक कर्म है कि वह मनुष्य के चरित्र का निर्माण करे, उसे उच्चता प्रदान करे। भारतीय कला के सौन्दर्यशास्त्र में महत्त्वपूर्ण कला की ये तीन शर्तें हैं, जिससे कला की सुन्दरता का स्तर तय होता है। भारतीय मानस में उत्तम और महान की धारणा व सुंदर की धारणा समानार्थक है।

कलाएँ लोक से उत्पन्न होती हैं, फिर धीरे-धीरे परिमार्जित और परिष्कृत होकर शास्त्रीय रूप ग्रहण करती हैं। ''नृत्य नाटक और संगीत के क्षेत्र में भी यही प्रक्रिया काम करती प्रतीत होती है। हमारे लोक और आदिवासी नृत्यों में आज भी जो भंग, भंगिमा, स्थान, आसन, मुद्राएँ और अंगविक्षेप देखने को मिलते हैं वे सदियों के दौरान धीरे-धीरे और धैर्यपूर्वक प्रयोगों द्वारा अधिकाधिक प्रांजल, ललित और आधुनिक बनकर भरतनाट्यम, ओडिसी, कुचीपुड़ी, मणिपुरी और कत्थक जैसे हमारे शास्त्रीय नृत्यरूपों में सम्मिलित कर लिए गये थे।''

विष्णुधर्मोतरम् विष्णुपुराण में एक प्रसंग है, जिसमें वज्र और मार्कण्डेय की कला सम्बन्धों पर चर्चा है। उसमें मार्कण्डेय संगीत को नृत्य, नाटक, चित्रकला और मूर्तिकला आदि सभी प्रदर्शनीय कलाओं को समझने की कुंजी बताते हैं। भारतीय मूर्तिकला और चित्रकला का गम्भीरता से अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि भारतीय चित्रकला अथवा मूर्तिकला में अधिकांशत: किसी भी पुरुष या नारी

की मानवीय आकृति को नृत्य की मुद्रा या भंगिमा में प्रदर्शित किया गया है, और नृत्य का गहरा सम्बन्ध संगीत से है। इस प्रकार भारतीय कलाओं में संगीत को आधारभूत स्थान प्राप्त है। पुरातात्विक खोजों में पाई गई मूर्तियों अथवा ऐतिहासिक भित्ति चित्रों अथवा चित्रकारी पर नृत्य और रंगमंच के अभिनय में बहुत हद तक समानता पाई जाती है। ''सभी रचनात्मक कलाओं का एक ही उद्देश्य था अर्थात् इन कलाओं के द्वारा और उनके माध्यम से मनुष्य के संचित तनाव को दूर करने का अवसर मिल जाए; ऐसी भावपूर्ण मन:स्थिति, मनोवैज्ञानिक अनुभूति, अस्तित्व की एक विशेष स्थिति उत्पन्न की जाए जिसमें मनुष्य, थोड़ी देर के लिए ही सही, अपनी रोज-रोज की भागदौड़ की जिन्दगी से मुक्ति पा ले; और उसे ऐसा अवसर दिया जाए कि वह जीवन की अन्य अधिक सूक्ष्म वास्तविकताओं को अनुभव कर सके। इस दृष्टि से संगीत और गायन को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया।

कला-संगीत ही नहीं भाषा और साहित्य की दृष्टि से भी भारत की गणना विश्व के प्राचीनतम देशों में की जाती है। यहाँ बोली जाने वाली सभी प्रमुख भाषाओं को दो भाषा परिवार में विभाजित किया जाता है- आर्य भाषा परिवार और द्रविड़ भाषा परिवार। देश के एक छोर से दूसरे छोर पर बोली जाने वाली सभी प्रमुख भाषाएँ इन्हीं दो भाषा परिवारों से सम्बद्ध रही हैं। देश के पूर्व में हम उड़िया, बंगला, असमिया, पश्चिम में गुजराती, मराठी, राजस्थानी; उत्तर में कश्मीरी, सिंधी, पंजाबी, उर्दू, दक्षिण में तमिल, मलयालम, तेलुगु, कन्नड़ और मध्य भाग में हिंदी भाषा प्रमुख रूप से बोली जाती है। इनमें से अधिकांश भारतीय भाषाओं का आदि स्रोत संस्कृत है।

साहित्य की दृष्टि से भारत की कुछ भाषाएँ अत्यंत समृद्ध हैं। यद्यपि ये अलग-अलग भाषा परिवारों की हैं फिर भी इसकी विषयवस्तु और रागात्मकता का मूल स्रोत एक ही है। हम यह कह सकते हैं कि भारतीय वाङ्मय अनेक भाषाओं में अभिव्यक्त एक ही विचार है। भारतीय साहित्य की इस अन्तश्चेतना को हम संस्कृत के इस श्लोक से भी समझ सकते हैं- ''एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।''

रामायण, महाभारत, पुराण, उपनिषद, संस्कृत साहित्य और काव्यशास्त्र, बौद्ध, जैन, नाथ, सिद्धों का साहित्य सम्पूर्ण भारतीय साहित्य की विषय वस्तु और प्रेरणा स्रोत रहे हैं।

भारतीय परम्परा और संस्कृति में जो कुछ उत्कृष्ट है वह रामायण और महाभारत में विद्यमान है। इसीलिए भारत की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में इन दोनों महाकाव्यों को उपजीव्य बनाकर रचना की गई। भारत के महान कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर एक उपमा दिया करते थे कि जिस तरह गंगा और यमुना नदियाँ गंगा के मैदान के करोड़ों लोगों को आहार प्रदान करती हैं, उसी तरह ये दो महाकाव्य भारत की संतानों को आत्मिक आहार प्रदान करते हैं। अवधी हिंदी में तुलसीदास कृत रामचरितमानस, बांग्ला में कृत्तिवास रामायण, उड़िया में सारला दास कृत विलंका रामायण असमिया में माधव कंदल की रामायण मराठी में मोरोपंत की रामकथा, तमिल में कम्ब की रामायण, कन्नड में पम्प की रामायण, तेलुगु में रंगनाथ रामायण तथा भाष्कर रामायण में भारतीय संस्कृति के उत्कृष्ट मूल्य सुरक्षित हैं। इसी प्रकार महाभारत के भी अनेक रूप भारत की भाषाओं में लिखे गये। तेलगु के प्राचीन कवियों नन्नय, तिक्ककन और एर्रन ने भी महाभारत लिखा। कन्नड़ के पम्प और कुमार व्यास के महाभारत बहुत प्रसिद्ध हुये। मलयालम में एजुत्तच्चन का महाभारत उनकी रामायण से भी सुंदर है। बांग्ला में महाभारत बहुत से लेखकों ने लिखा है, काशीरामदास का महाभारत बहुचर्चित और सर्वस्वीकृत है। उड़िया में सरलादास का महाभारत प्रसिद्ध है। हिंदी में मध्ययुग में गोकुलनाथ और सबलसिंह ने महाभारत लिखा किन्तु आधुनिक भारत में मैथिलीशरण गुप्त का 'जय भारत' सर्वाधिक प्रसिद्ध हुआ।

यदि हम भारतीय भाषा और साहित्य की विकास रेखाओं को देखें तो हमें अद्भुत समानता दिखाई देती है। भाषा की

दृष्टि से संस्कृत, तमिल और उर्दू को छोड़कर सभी भाषाओं के उद्भव का समय प्राय: समान है। यही स्थिति साहित्य के विकास को लेकर भी है। लगभग पन्द्रहवीं शती जिसे साहित्य का आदिकाल कहते हैं, प्राय: सभी भाषाओं में समान है। मध्यकाल, जिसे पश्चिमी देशों में अंधकार युग के रूप में जाना जाता है, हमारे यहाँ साहित्य का स्वर्ण युग है। वस्तुत: मध्यकाल का भारतीय साहित्य मुख्य रूप से भक्ति साहित्य ही है। पूर्व से पश्चिम व काश्मीर से कन्याकुमारी तक सारा भारतीय साहित्य भक्ति से सराबोर है। भक्ति युग न केवल साहित्य की दृष्टि से बल्कि विभिन्न कलाओं जैसे स्थापत्य कला, चित्रकारी, नक्काशी और संगीत कला की दृष्टि से भी समृद्ध रहा है। आधुनिक काल का आरम्भ भी भारत के सम्पूर्ण साहित्य में 1857 ई. के आस- पास ही माना जाता है। दक्षिणी भारत और बंगाल पाश्चात्य देशों के सम्पर्क में पहले आये इसलिए वहाँ पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव उत्तरी भारत की अपेक्षा जल्दी आरम्भ हो गया। भारतीय साहित्य में आधुनिक काल के उदय की ओर संकेत करते हुए डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं- ''वास्तव में आधुनिक युग का उदय पाश्चात्य सम्पर्क के साथ न होकर उसके विरुद्ध संघर्ष के साथ, दूसरे शब्दों में प्रबुद्ध भारतीय चेतना के उदय के साथ होता है और इस दृष्टि से भारतीय वाङ्मय में आधुनिकता का समारम्भ लगभग समकालिक ही है। विगत शताब्दी में, स्वतंत्रता से पूर्व साल 1947 तक सामन्यत: आधुनिक साहित्य के सामान्यत: चार चरण है- (1) पुनर्जागरण (2) राष्ट्रीय-सांस्कृतिक भावना का उत्कर्ष (जागरण-सुधार) (3) रोमानी सौन्दर्य दृष्टि का उन्मेष और (4) साम्यवादी सामाजिक चेतना का उदय। कुछ समय के अन्तर से भारत की सभी भाषाओं में उपर्युक्त प्रवृत्तियों का अनुसंधान किया जा सकता है।'' अस्मितामूलक विमर्शों की प्रवृत्ति समकालीन भारतीय साहित्य की विशिष्टता रही है। इनमें दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, स्त्री विमर्श आदि शामिल हैं। इन विमर्शों का लेखन हर भारतीय भाषा में हो रहा है।

विषय वस्तु और प्रेरणा स्रोत ही नहीं बल्कि काव्य रूपों और काव्य शैलियों का अन्त: सम्बन्ध भी सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। उस दृष्टि से संस्कृत और अपभ्रंश साहित्य के काव्य रूपों का प्रभाव उल्लेखनीय है। संस्कृत के महाकाव्य खण्ड काण्य, मुक्तक काव्य, कथा, आख्यायिका का प्रभाव भारत के सम्पूर्ण साहित्य पर पड़ा। अपभ्रंश काव्य परम्परा के चरितकाव्य, प्रेमगाथा शैली सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में मिलते हैं। आधुनिक युग में पश्चिम के अनेक काव्य रूपों का प्रभाव भारतीय साहित्य पर पड़ा।

सार-संक्षेप भारतीय साहित्य की एक प्रमुख विशिष्टता रही है। गहरे और गूढ़ ज्ञान की बात को भी संक्षेप में कहना भारतीय परम्परा का हिस्सा रहा है। इसलिए भारतीय साहित्य में सूत्र साहित्य, तिरुक्कुरल, दोहा आदि लिखने की परम्परा विकसित हुई। इन काव्य रूपों में भारतीय परम्परा का विस्तृत ज्ञान संचित है।

भारतीय सभ्यता के आरम्भिक दौर में विभिन्न कलारूपों में एकरूपता देखने को मिलती हैं। उस दौर में विभिन्न कलाएँ एक-दूसरे से बहुत गहरे स्तर पर मिली-जुली थीं। आरम्भिक कविता, गायन, नृत्य और दर्शन एक-दूसरे से जुड़े हुए समरूप दिखाई पड़ते हैं। भारतीय दर्शन और साहित्य को जीवित रखने में मौखिक परम्पराओं का बहुत योगदान रहा है। वेद की ऋचाओं से लेकर भारत का आदि काव्य रामायण और महाभारत तक को संरक्षित और प्रसारित करने में मौखिक परम्परा ने मुख्य भूमिका निभाई है। सामाजिक संरचना और संसाधनों में बदलाव के बाद विधाओं में भी बदलाव होता है। छापाखाना आने के बाद मौखिक साहित्य से ज्यादा लिखित साहित्य के हिसाब से साहित्य रचा जाने लगा। भारत में भारतीय साहित्य का जुड़ाव जनसरोकारों से अधिक हुआ। सुविधाजनक होने से लिखित साहित्य ने भारतीय समाज में अपनी जगह बनाई। किन्तु आज भी भारत की मौखिक परम्परा आदिवासी समाज में जीवित है।

भारतीय कला और साहित्य में संघर्ष से अधिक समन्वय को महत्त्व दिया गया है। भारत की विविधता और बहुरूपता की विशिष्टता की वजह से संघर्ष की स्थिति बन सकती थी, पर भारतीय जन ने समन्वय का रास्ता चुना। समन्वय का यह जीवन मूल्य भारतीय साहित्य और कलाकृतियों में भी देखने को मिलता है। भारतीय साहित्य में सुखांत की अवधारणा बहुत हद तक इस समन्वय के जीवन मूल्य से प्रभावित है। ❑

भारतीय कला और साहित्य में संघर्ष से अधिक समन्वय को महत्त्व दिया गया है। भारत की विविधता और बहुरूपता की विशिष्टता की वजह से संघर्ष की स्थिति बन सकती थी, पर भारतीय जन ने समन्वय का रास्ता चुना। समन्वय का यह जीवन मूल्य भारतीय साहित्य और कलाकृतियों में भी देखने को मिलता है। भारतीय साहित्य में सुखांत की अवधारणा बहुत हद तक इस समन्वय के जीवन मूल्य से प्रभावित है।

आधुनिक भारत और तकनीक

डॉ. सत्यप्रकाश पाल

सहायक आचार्य,
हिन्दी विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी (उ.प्र.)

किसी भी देश के विकास में विज्ञान और तकनीकी विकास की प्रमुख भूमिका होती है। किसी भी देश का विकास तभी सम्भव हो सकता है जब वह तकनीकी रूप से विकसित व समृद्ध हो। इसलिए भारत को तकनीकी रूप से विकसित होने के लिए समय और साधन दोनों की आवश्यकता है। वर्तमान में हमारा समाज विभिन्न प्रकार के तकनीकों से समृद्ध हुआ है। हमारा दैनिक जीवन भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं है। तकनीक का सही प्रयोग मानव के जीवन को सरल व सुगम्य बना रहा है वहीं इसका दुरुपयोग देश को अवनति के गर्त में ले जा रहा है। विज्ञान और तकनीक को आज प्रत्येक राष्ट्र अपने को विकसित करने के लिए इसका प्रयोग कर रहा है। तकनीक ने कई क्षेत्रों में नवीन खोज किए, जिसमें चिकित्सा, रक्षा, शिक्षा आदि। इनके बुनियादी ढाँचे को मजबूत बनाने में तकनीकी ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अगर विज्ञान व तकनीक का हस्तक्षेप हमारे जीवन में नहीं होता तो जीवन जीने का ढंग अलग होता और हो सकता है कि हम जीवन जीने में वह स्वतंत्रता नहीं महसूस कर पाते जो आज हम कर रहे हैं।

आज डिजिटल इण्डिया को बढ़ावा दिया जा रहा तथा प्राकृतिक स्रोतों की सुरक्षा के लिए नित नए प्रस्ताव रखें व लागू किए जा रहे हैं। हमारे शोधकर्ताओं और वैज्ञानिकों को नई तकनीक के उत्पादन व प्रयोग में सक्रिय भूमिका निभानी होगी क्योंकि अब लीक से हटकर सोचने का समय है तथा व उद्योगों को विकसित करने का दौर हैं। विवेकानंद कहते थे उठो, जागो और तब तक मत रूको, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।

आधुनिक युग के हर क्षेत्र में विज्ञान को तकनीकी ने परिवर्तन के साथ एक नई दिशा दी है। वर्तमान में मानवीय समस्या को सुलझाने के लिए समय की बचत व साधन की उपयोगिता हमारे लिए कारगर साबित हो रही है। तकनीक के माध्यम से ही हम घर बैठे देश दुनिया की खोज-खबर चन्द क्षणों में प्राप्त कर पा रहे हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में नए तकनीकी विकास से नई दवाइयाँ, नये-नये उपकरण विकसित हो रहे हैं। जिनकी सहायता से असाध्य रोगों का इलाज सम्भव हो पा रहा है। मानवता के विकास और जीवन में सुधार के लिए हमें हमेशा विज्ञान व प्रौद्योगिकी की सहायता लेनी होगी। यदि हम इसकी मदद नहीं लेते तो कम्प्यूटर, इंटरनेट, बिजली आदि जैसे उपकरणों का समुचित प्रयोग नहीं कर पाते और हम आर्थिक रूप से भविष्य में विकसित नहीं हो पाते। तकनीक ने अपने महत्त्वपूर्ण योगदान द्वारा सजीव से लेकर निर्जीव

वस्तुओं पर अपनी छाप छोड़ी है। विज्ञान ने विभिन्न प्रकार के तकनीकों के प्रयोग से शिक्षा में बदलाव का एक माध्यम लेकर आया जिससे अशिक्षित क्षेत्रों में सुधार आया तथा शिक्षा के क्षेत्र में क्रांति आई। तकनीक द्वारा शिक्षक व छात्र दुनिया भर में किसी के साथ समन्वय स्थापित कर सकते हैं तथा अपने विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। इण्टरनेट के माध्यम से भ्रमसूचक जानकारी को दूर करना तथा नित नई जानकारी को तुरन्त प्राप्त कर सकते हैं। जिससे देश को विकसित होने में सुगमता होती है। आनलाइन शिक्षा प्रणाली ने विद्यार्थियों व शिक्षकों के लिए एक नई राह खोली है, जिसे हम कोविड जैसे समय में (विशेष समय) उपयुक्त पाते हैं और छात्रों को पठन-पाठन में उपयोगी हुआ व सुरक्षा के साथ ज्ञान की उपलब्धि हुई। प्रौद्योगिकी के कई आयाम है जो देश कि आवश्यकता के अनुसार भू-राजनीति प्रौद्योगिकी के अनुकूलन को प्रोत्साहित करती है जो आर्थिक सम्पन्नता को प्रेरित और राष्ट्रीय सुरक्षा की अत्यधिक सशक्त बना सकती है।

भारत का विकास इसकी भी उसकी प्रौद्योगिकी क्षमता के विकास पर ही निर्भर कर सकता है। कोविड-19 महामारी जैसे समय में भारत ने कोरोना का टीका बनाकर अपनी नई क्षमता का परिचय पूरे विश्व के समझ पेश किया। यह कामयाबी भारतीय चिकित्सकों की बड़ी कामयाबी है।

रक्षा के क्षेत्र में भी भारत अपने स्वदेशी तकनीकों का प्रयोग करके INS विक्रांत जैसे युद्धविमान पोत का निर्माण किया है जो हमारे लिए गौरव का विषय है, पिछले कुछ वर्षों में रक्षा शोध ने मुख्य युद्ध टैंकों उन्नत मिसाइल प्रणालियों, हल्के लड़ाकू विमानों तथा विभिन्न यानों की डिजाइनिंग विकास तथा उत्पादन को प्रेरित किया है। यह उन्नति दर्शाती है कि आज भारत के पास कई उन्नत प्रौद्योगिकी प्रणालियाँ है जो भारत को एक विकसित राष्ट्र बनाती है। भारत में आधुनिक

तकनीक विभिन्न विकास के क्षेत्रों जैसे विज्ञान, उद्योग, कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है। आधुनिक तकनीक की सहायता से कृषि करने के तरीको व उपकरणों में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। ट्रेक्टर आदि आधुनिक उपकरणों के माध्यम से कृषि-कला में सुधार आया है और उसे व्यापारिक स्तर पर बल प्राप्त हुआ है। आज कृषकों के लिए विविध योजनाएँ चलाई जा रही है, जिसका लाभ कृषक प्राप्त कर रहे और खाद्यान्न उत्पादन उपभोग में सहयोग दे रहे। यह खुशी की बात है कि केन्द्र और राज्य सरकारें प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा देने के लिए प्रतिबद्ध हैं। इसी उद्देश्य को सामने रखकर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में तैयार की गई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में सूचना एवं प्रौद्योगिकी पर विशेष बल दिया गया है।

आज डिजिटल इण्डिया को बढ़ावा दिया जा रहा तथा प्राकृतिक स्रोतों की सुरक्षा के लिए नित नए प्रस्ताव रखें व लागू किए जा रहे हैं। हमारे शोधकर्ताओं और वैज्ञानिकों को नई तकनीक के उत्पादन व प्रयोग में सक्रिय भूमिका निभानी होगी क्योंकि अब लीक से हटकर सोचने का समय है तथा व उद्योगों को विकसित करने का दौर हैं। विवेकानंद कहते थे उठो, जागो और तब तक मत रूको, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।

इसी दृढ़ निश्चय व नित नए तकनीक का प्रयोग कर हमारा भारत देश आगे बढ़ेगा और आत्मनिर्भरता की ओर कदम बढ़ायेगा। वर्तमान दौर में फेसबुक, वाट्सएप, ट्यूटर इत्यादि के माध्यम से आज देश-विदेश में लोग अपनी पहचान स्थापित कर पा रहे है यही नहीं सोशल मीडिया के माध्यम से हम अपनी बात या किसी भी प्रकार की समस्या को लोगों तक पहुँचा सकते हैं। पहले जो पर्दे पर फिल्म दिखाई जाती थी उसे अब थ्री डी के माध्यम से सिनेमा घरों में दिखाया जा रहा है। आधुनिक तकनीक से मनोरंजन का क्षेत्र भी काफी विस्तृत व विकसित हो गया है।

तकनीकी शिक्षा के माध्यम से देश के युवाओं को प्रशिक्षण देकर उनको हुनर पहचान कर आगे बढ़ाया जाता है। जब देश के युवा आगे बढ़ेगे तब हमारे देश का विकास होगा। विविध तकनीक के प्रयोग व प्रशिक्षण से बेरोजगारी घटती है और रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं। देश के उत्पादन क्षमता को बढ़ाना तकनीकी शिक्षा का उद्देश्य है। राष्ट्र के समृद्धि के उत्थान के लिए हर देश की तकनीकी शिक्षा को बढ़ावा देना चाहिए। ❑

भारतीय कला, संगीत, भाषा और साहित्य

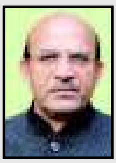

प्रो. प्रकाश चन्द्र अग्रवाल
प्राचार्य,
क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान,
भुवनेश्वर (ओडिसा)

मानव जीवन में कला का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक कलात्मक प्रक्रिया का उद्देश्य सौंदर्य तथा आनंद की अभिव्यक्ति होती है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा इस रूप में उसे अपनी भावनाओं तथा विचारों का प्रत्यक्षीकरण करना है। यह प्रत्यक्षीकरण अथवा प्रकटीकरण कला के माध्यम से ही संभव है।

'कला' शब्द संस्कृत के कल धातु में कच तथा टाप (कल+कच+टाप) लगाने से बनता है। संस्कृत कोश में यह शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है जैसे – किसी वस्तु का खोल, खंड, चंद्रमा की एक रेखा, शोभा, अलंकरण, कुशलता, मेधाविता आदि। किन्तु इतिहास तथा संस्कृति के संदर्भ में 'कला' से तात्पर्य सौंदर्य, सुंदरता अथवा आनंद से है। अपने मनोगत भावों को सौंदर्य के साथ दृश्य रूप में व्यक्त करना ही कला है।

आचार्य क्षेमराज के अनुसार मनुष्य अपने (स्व) को किसी न किसी वस्तु के माध्यम से व्यक्त करता है और इस भावाभिव्यक्ति की प्रक्रिया ही कला है और यह अभिव्यक्ति चित्र, नृत्य, मूर्ति, वाद्य आदि के माध्यम से व्यक्त होती है। इस प्रकार कला मनुष्य के सौंदर्य की भावना को मूर्तरूप प्रदान करती है। वस्तुत: कला का उद्‌गम सौंदर्य की मूलभूत प्रेरणा का ही परिणाम है।

भारत प्राचीन काल से ही संस्कृति और कला के क्षेत्र में बहुत ही समृद्ध रहा है। प्राचीन भारत में कला को साहित्य और संगीत के समकक्ष तथा एक दूसरे से जुड़ा हुआ मानकर मनुष्य के लिए उसे आवश्यक बताया गया है। भर्तृहरि ने अपने 'नीतिशतक' में स्पष्टत: लिखा है कि साहित्य, संगीत तथा कला से हीन मनुष्य पूँछ और सींग से रहित साक्षात पशु के समान है –

साहित्य-संगीत-कला-विहीनः।
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।।

– नीतिशतक (भर्तृहरि)

भारतीय परंपरा में कला को लोकरंजन का समानार्थी निरूपित किया गया है। चूंकि इसका एक अर्थ कुशलता अथवा मेधाविता भी है, अत: किसी कार्य को सम्यक् रूप से सम्पन्न करने की प्रक्रिया को भी कला कहा जा सकता है। जिस कौशल द्वारा किसी वस्तु में उपयोगिता और सुंदरता का संचार हो जाए, वही कला है। भारतीय कला का इतिहास अत्यंत प्राचीन तथा गौरवशाली है वस्तुत: यह कला यहाँ के निवासियों के

विचारों को समझने का एक सबल माध्यम है।

भारतीय लोक कलाएँ 3000 से अधिक वर्षों से पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही हैं। भारत 50 से अधिक पारंपरिक लोक और जनजातीय कलाओं का घर है।

प्रारंभिक भारतीय कला लगभग 8000 ईसा पूर्व के चित्रों, नक्काशियों और मूर्तियों का एक विशाल भंडार है। 500 ईस्वी तक समृद्ध गुप्त साम्राज्य तक इसे प्रागैतिहासिक कला, सिंधु घाटी कला, मौर्य कला, बौद्ध कला और गुप्त कला में विभाजित किया जा सकता है। कला का पारंपरिक उपखंड, वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, साहित्य, संगीत, प्रदर्शन और फिल्म है। संतुलन, जोर (उठाव), गति, अनुपात, लय, एकता और विविधता को एक कलाकार कला के काम के भीतर तत्त्वों को व्यवस्थित करने के लिए उपयोग करता है।

भारत जैसा विविधतापूर्ण देश अपनी संस्कृति की बहुलता का प्रतीक है। भारत गीतों, संगीतों, नृत्यों, रंगमंचों, लोक-परंपराओं, प्रदर्शन-कलाओं, संस्कारों और अनुष्ठानों, चित्रों और लेखन की दुनिया का सबसे बड़ा संग्रह है, जिसे मानवता की 'अमूर्त सांस्कृतिक विरासत' के रूप में जाना जाता है।

भारतीय कला की विशेषताएँ

कला भारत के लिए एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक या आध्यात्मिक रूप है। लगभग सभी कलाओं को ऐतिहासिक रूप से आध्यात्मिकता के नाम पर निर्मित किया गया था। हालाँकि, भारतीय कलाकृति में अन्य रूपांकन भी शामिल हैं, जिनमें कथाएँ, लोककथाएँ और दिन-प्रतिदिन का जीवन शामिल है।

भारतीय कला में चित्रकला, मूर्तिकला, मिट्टी के बर्तनों और बुने हुए रेशम जैसे वस्त्र कलाओं सहित विभिन्न प्रकार के कला रूप शामिल हैं। भौगोलिक रूप से यह पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में फैली हुई है, जिसमें अब भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल और कभी-कभी पूर्वी अफगानिस्तान भी शामिल है।

भारतीय कला की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो इसे अन्य देशों की कलाओं से पृथक करती हैं। इसकी सर्वप्रथम विशेषता के रूप में निरन्तरता अथवा अविच्छिन्नता को रखा जा सकता है। लगभग पाँच सहस्त्र वर्ष पुरानी सिन्धु सभ्यता की कलाकृतियों से लेकर बारहवीं सदी तक की कलाकृतियों में एक अविच्छिन्न कलात्मक परम्परा प्रवाहित होती हुई दिखाई पड़ती है। भारतीय कला के विभिन्न तत्त्वों, जैसे नगर-विन्यास, स्तम्भ युक्त भवन निर्माण, मूर्ति निर्माण आदि का जो रूप है वह भारत की इस प्राचीनतम सभ्यता में दिखाई देता है। उसी आधार पर कालान्तर में वास्तु तथा काष्ठकला का सम्यक्-विकास हुआ।

भारतीय संस्कृति का प्रधान तत्त्व धार्मिकता अथवा आध्यात्मिकता की प्रबल भावना है, जिसने उसके सभी पक्षों को प्रभावित किया है। कला भी इसका अपवाद नहीं है। इसके सभी पक्षों-वास्तु या स्थापत्य, काष्ठकला, चित्रकला आदि के ऊपर धर्म का व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है। हिन्दू, जैन, बौद्ध आदि धर्मों से सम्बन्धित मन्दिरों, मूर्तियों तथा चित्रों का निर्माण कलाकारों के द्वारा किया गया।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इसमें लौकिक विषयों की उपेक्षा की गयी। धार्मिक रचनाओं के साथ ही साथ

अशोक के सारनाथ सिंह शीर्ष स्तंभ की फलक पर उत्कीर्ण चार पशुओं-गज, अश्व, बैल तथा सिंह के माध्यम से क्रमशः महात्मा बुद्ध के विचार, जन्म - गृहत्याग तथा सार्वभौम सत्ता के भावों को व्यक्त किया गया है। भारतीय कला में कई अनेक शुभ अथवा मंगल सूचक प्रतीक भी हैं। भारतीय कलाकार भौतिक यश तथा वैभव के प्रति उदासीन थे। लगता है इसी कारण उन्होंने अपनी कृतियों में कहीं भी अपने नाम का उल्लेख नहीं किया है।

भारतीय कलाकारों ने लौकिक जीवन से सम्बन्धित मूर्तियों अथवा चित्रों का निर्माण भी बहुतायत में किया है। इस प्रकार धार्मिकता तथा लौकिकता का सुन्दर समन्वय हमें भारतीय कला में देखने को मिलता है।

भारतीय कला में अभिव्यक्ति की प्रधानता दिखाई देती है। कलाकारों ने अपनी कुशलता का प्रदर्शन शरीर का यथार्थ चित्रण करने अथवा सौंदर्य को उभारने में नहीं किया है। इसके स्थान पर आंतरिक भावों को उभारने का प्रयास ही अधिक हुआ है। इसका सबसे सुन्दर उदाहरण हमें विशुद्ध भारतीय शैली में बनी बुद्ध-मूर्तियों में देखने को मिलता है। जहाँ गांधार शैली की मूर्तियों में बौद्धिकताएँ व शारीरिक सौंदर्य की प्रधानता है, वहीं गुप्तकालीन मूर्तियों में आध्यात्मिकता एवं भावुकता है।

भारतीय कलाकार ने बुद्ध मूर्तियाँ बनाते समय उनके मुख मण्डल पर शान्ति, गंभीरता एवं अलौकिक आनन्द को उभारने की ओर ही विशेष ध्यान दिया है तथा इसमें उसे अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। भारतीय कलाकार का आदर्श अत्यन्त ऊँचा था। उसने कला को इन्द्रिय सुख की प्राप्ति का साधन न मानकर परमानन्द की प्राप्ति का साधन स्वीकार किया था। उसकी दृष्टि में रूप या सौन्दर्य पाप वृत्तियों को उकसाने का साधन नहीं था अपितु इसका उद्देश्य चित्तवृत्तियों को ऊँचा उठाना था।

भारतीय कला का एक विशिष्ट तत्त्व प्रतीकात्मकता है। इसमें कुछ प्रतीकों के माध्यम से अत्यंत गूढ़ दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों को व्यक्त कर दिया गया है। कुषाण युग के पूर्व महात्मा बुद्ध का अंकन प्रतीकों के माध्यम से ही किया गया है। पद्म, चक्र, हंस, स्वस्तिक आदि प्रतीकों के माध्यम से विभिन्न भावनाओं को व्यक्त किया गया है। पद्मप्राण या जीवन का, चक्रकाल या गति का तथा स्वस्तिक सूर्य सहित चारों दिशाओं का प्रतीक माना गया है।

अशोक के सारनाथ सिंह शीर्ष स्तंभ की फलक पर उत्कीर्ण चार पशुओं-गज, अश्व, बैल तथा सिंह के माध्यम से क्रमशः महात्मा बुद्ध के विचार, जन्म-गृहत्याग तथा सार्वभौम सत्ता के भावों को व्यक्त किया गया है। भारतीय कला में कई अनेक शुभ अथवा मंगल सूचक प्रतीक भी हैं। भारतीय कलाकार भौतिक यश तथा वैभव के प्रति उदासीन थे। लगता है इसी कारण उन्होंने अपनी कृतियों में कहीं भी अपने नाम का उल्लेख नहीं किया है।

भारतीय संस्कृति में अभिव्यक्त समन्वय की प्रवृत्ति भी कलात्मक कृतियों के के माध्यम से मूर्तमान हो उठी है। सुकुमारता का गंभीरता के साथ, रमणीयता का संयम के साथ, अध्यात्म का सौन्दर्य के साथ तथा यथार्थ का आदर्श के साथ अत्यन्त सुन्दर समन्वय हमें इस कला में दिखाई देता है। सुप्रसिद्ध कलाविद् हेवेल ने आदर्शवादिता, रहस्यवादिता, प्रतीकात्मकता तथा पारलौकिकता को भारतीय कला का सारतत्त्व निरूपित किया है।

भारत की कला राष्ट्रीय एकता को स्थूल रूप में प्रकट करने का एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। समूचे देश की कलात्मक विशेषताएँ प्रायः एक जैसी हैं। मूर्तियों में समान लक्षण तथा मुद्राएँ देखने को मिलती हैं। विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियों को देखने के बाद ऐसा जान पड़ता है कि वे किसी देशव्यापी संस्था द्वारा तैयार करवाई गयी हैं। पर्वतों को काटकर बनवाये गये मन्दिरों अथवा पाषाण निर्मित मन्दिरों में यद्यपि कुछ स्थानीय विभिन्नताएँ हैं, तथा उनकी सामान्य शैली एक ही प्रकार की है। इनके माध्यम से भारतीय एकता की भावना साकार हो उठती है। इस

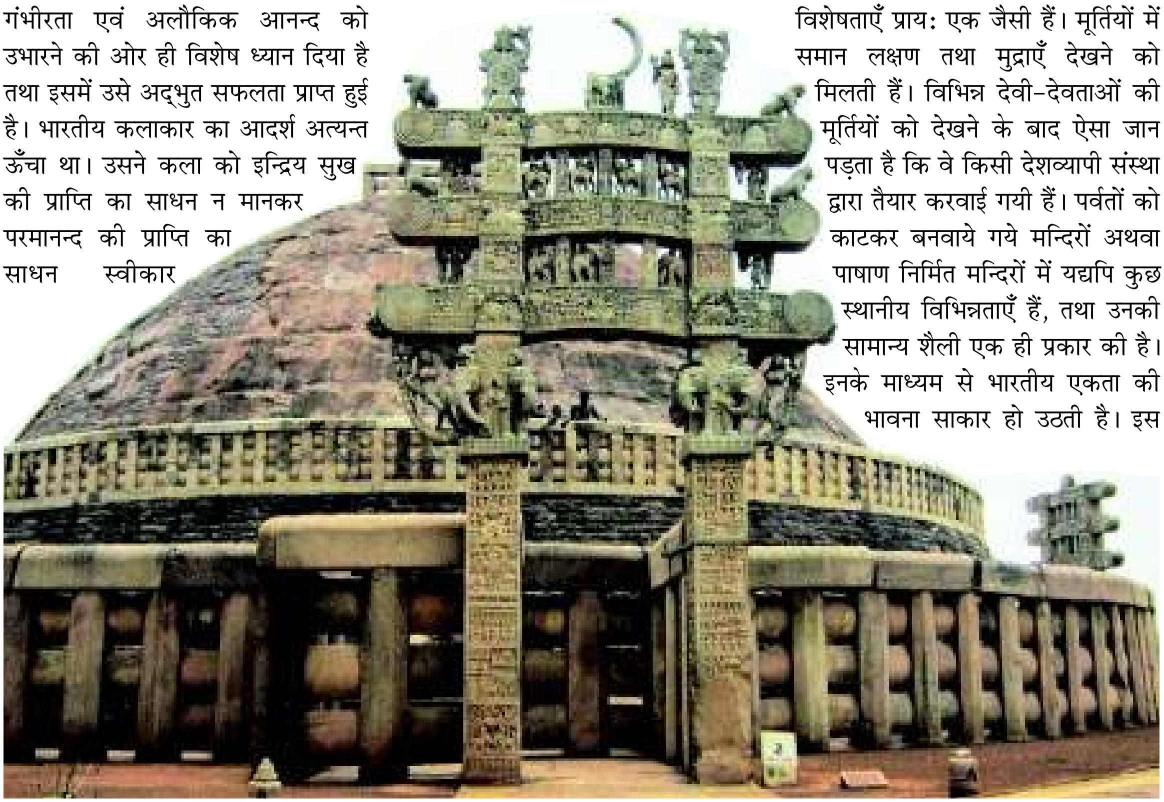

प्रकार भारतीय कला राष्ट्रीय एकता की संदेश वाहिका है।

भारतीय कला में सर्वांगीणता दिखाई देती है। दूसरे शब्दों में इसमें राजा तथा सामान्य जन दोनों का चित्रण मुक्त रूप से किया गया है। यदि मौर्यकाल की कला दरबारी है तो शुंगकाल की कला लोक जीवन से सम्बन्धित है। विभिन्न कालों की कलाकृतियों में सामान्य जन-जीवन की मनोरम झाँकी सुरक्षित है। यदि भारतीय कलाकार ने कुलीन वर्ग की रुचि के लिए विशाल एवं सुन्दर कृतियों का निर्माण किया है तो सामान्य जनता के लिए रुचिकर रचनाएँ भी गढ़ी हैं। इस प्रकार वी. एस. अग्रवाल के शब्दों में ''भारतीय कला देश के विचार, धर्म, तत्वज्ञान तथा संस्कृति का दर्पण है। भारतीय जन-जीवन की पुष्कल व्याख्या कला के माध्यम से हुई है।''

भारतीय कला की एक विशेषता के रूप में सार्वभौमिकता अथवा अन्तरराष्ट्रीयता का उल्लेख किया जा सकता है। इसके तत्त्व देश की सीमाओं का अतिक्रमण कर दक्षिणी-पूर्वी एशिया से लेकर मध्य एशिया तक के विभिन्न स्थानों में अत्यन्त प्राचीन काल में ही फैल गए। प्रसिद्ध कलाविद् आनन्द कुमार स्वामी ने तो दक्षिणी-पूर्वी एशिया की कला को भारतीय कला का ही एक अंग स्वीकार किया है। इसी प्रकार मध्य एशिया की मूर्तियों तथा स्तूपों पर भी गांधारकला का प्रभाव देखा जा सकता है।

कला का स्वरूप

संगीत

भारतीय संगीत को आमतौर पर शास्त्रीय संगीत की दो प्रमुख परंपराओं में विभाजित किया जाता है। उत्तर भारत का हिंदुस्तानी संगीत और दक्षिण भारत का कर्नाटक संगीत। हालाँकि भारत के कई क्षेत्रों की अपनी संगीत परंपराएँ भी हैं जो इनसे स्वतंत्र हैं।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की एक समृद्ध परंपरा है जिसकी उत्पत्ति दक्षिण एशिया में हुई और अब इसे दुनिया के सभी कोनों में पाया जा सकता है। इसकी उत्पत्ति 6,000 साल पहले पवित्र वैदिक शास्त्रों में हुई थी, जहाँ मंत्रों ने संगीत और लयबद्ध चक्रों की एक प्रणाली विकसित की थी।

भारतीय शास्त्रीय संगीत श्रेणी में भी बहुत समान लेकिन सौम्य शैलियों की विविधता है। इन्हें 'अर्ध-शास्त्रीय' भारतीय या 'प्रकाश-शास्त्रीय' संगीत जैसे- चैती, नाट्य- संगीत, भजन, ठुमरी, कजरी, टप्पा, दादरा के रूप में जाना जाता है। लावणी महाराष्ट्र, वेस्टइंडीज में सबसे प्रसिद्ध संगीत प्रारूपों में से एक है।

राग/रागम भारतीय शास्त्रीय संगीत में आवश्यक मधुर तत्त्व है। एक राग एक पैमाने के यूरोपीय विचार के समान पिचों की एक श्रृंखला है। एक राग में अक्सर विशिष्ट मधुर आकार, एक पिच पदानुक्रम और विशिष्ट पिचों पर विशेषता का अलंकरण होता है।

भारतीय संगीत के सप्तक

ये हैं- सा, रे, गा, मा, पा, धा और नी। इनमें से, रे, गा, धा और नी मूल स्वर की तुलना में एक सेमीटोन नीचे, या एक सेमीटोन ऊपर स्थित है; विशेषण, कोमल (अर्थात् कोमल) द्वारा संदर्भित और नोट के नीचे एक क्षैतिज रेखा द्वारा निरूपित: रे, गा, ध और नि।

भारतीय संगीत की बुनियादी अवधारणाओं में श्रुति (माइक्रोटोन्स), स्वर (नोट्स), अलंकार (अलंकरण), राग (मूल व्याकरण से सुधारित धुन), और ताल (टक्कर में प्रयुक्त लयबद्ध पैटर्न) शामिल हैं।

प्रदर्शन आमतौर पर इन मानदंडों के भीतर एक व्यवस्था से चिह्नित होते हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत प्रकृति में मोनोफोनिक है और एक एकल राग रेखा के आसपास आधारित है जो एक निश्चित टोन पर बजाया जाता है। यह प्रदर्शन विशेष रागों पर और लयबद्ध रूप से तालों पर आधारित है।

भारतीय संगीत के प्रकार

शास्त्रीय भारतीय संगीत, लोक संगीत शैली, बोर्जेट, बाउल, श्यामा, भजन, रामप्रसादी, रवींद्र संगीत, द्विजेंद्र गीति, अतुलप्रसादी, प्रभात संगीता, ठुमरी, दादरा, चैती, कजरी।

भाषा और साहित्य

हिंदू साहित्यिक परंपराएँ भारतीय संस्कृति के एक बड़े हिस्से पर हावी हैं। प्रारंभिक भारतीय साहित्य ने प्रामाणिक हिंदू पवित्र लेखन का रूप ले लिया, जिसे वेद के रूप में जाना जाता है, जो संस्कृत में लिखे गए थे। वेद में ब्राह्मण और उपनिषद जैसी गद्य टीकाएँ जोड़ी गईं। परंपरागत रूप से भारतीय साहित्य पद्य और मौखिक साहित्य में से एक था। भारत में प्राचीनतम ज्ञान साहित्य वेद हैं। वेद एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मौखिक रूप से सौंपे गए थे। वेदों का संरक्षण हमारी सबसे उल्लेखनीय उपलब्धियों में से एक है। वेद ज्ञान का एक पवित्र रूप है। इसके अलावा हिंदू महाकाव्य-रामायण और महाभारत जैसे अन्य काव्य हैं, वास्तुकला और नगर योजना में वास्तुशास्त्र जैसे ग्रंथ हैं। इन्हें चार मुख्य अवधियों में विभाजित किया जा सकता है : पूर्व-ऐतिहासिक, प्राचीन, इस्लामी उत्थान का युग या मध्ययुगीन काल और औपनिवेशिक काल।

भारतीय साहित्य, भारतीय उपमहाद्वीप के लेखन, संस्कृत, प्राकृत, पाली, बंगाली, बिहारी, गुजराती, हिंदी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, उड़िया, पंजाबी, राजस्थानी, तमिल, तेलुगु, उर्दू सहित विभिन्न स्थानीय भाषाओं में निर्मित हैं। संस्कृत अनेक भारतीय भाषाओं की जननी है। वेद, उपनिषद, पुराण और धर्मसूत्र सभी संस्कृत में लिखे गए हैं। धर्मनिरपेक्ष और क्षेत्रीय साहित्य की भी एक किस्म है।

भारतीय साहित्य 1947 तक भारतीय उपमहाद्वीप को और उसके बाद भारत गणराज्य में निर्मित साहित्य को संदर्भित

करता है। भारत गणराज्य में 22 आधिकारिक मान्यता प्राप्त भाषाएँ हैं। भारतीय साहित्य की प्रारंभिक रचनाएँ मौखिक रूप से प्रसारित हुई है।

भारतीय साहित्य यकीनन दुनिया के सबसे पुराने और समृद्ध साहित्य में से एक है। इसके अतिरिक्त, भारतीय साहित्य के सबसे पुराने कार्यों में ज्ञान का मौखिक प्रसारण भी शामिल है। भारत अनन्य विविधताओं वाला विशाल देश है और विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के लोगों को समायोजित करता है।

साहित्य के परिदृश्य में, चार प्रमुख विधाएँ हैं : कविता, नाटक, कथा-साहित्य और रचनात्मक गैर-कथा। भारतीय साहित्य को जीवनी, कविता, नाटक, उपन्यास, लघु कथाएँ और महाकाव्य में विभाजित किया जा सकता है। भारतीय साहित्य समृद्ध भारतीय संस्कृति, सामाजिक और पारंपरिक मूल्यों से लेकर स्वतंत्रता संग्राम, राष्ट्रवाद और समकालीन आधुनिक मुद्दों जैसे विविध विषयों को उजागर करता है।

भारत, 22 अनुसूचित भाषाओं, 122 क्षेत्रीय भाषाओं, छह शास्त्रीय भाषाओं, (संस्कृत, तमिल, कन्नड़, तेलुगु, मलयालम और उड़िया) और हजारों मातृभाषाओं और अनगिनत बोलियों के साथ, एक अद्वितीय भाषाई और साहित्यिक इतिहास का दावा कर सकता है।

भारतीय साहित्य के प्रकार

ऋग्वेद भारतीय साहित्य का सबसे प्राचीन ग्रंथ है। तदनुसार प्राचीन भारतीय साहित्य को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है- जिन्हें श्रुति और स्मृति के रूप में जाना जाता है। श्रुति मुखर या श्रवण है और स्मृति वह है जिसे याद किया जाता है। वेद और उपनिषद श्रुति के अंतर्गत आते हैं जबकि स्मृति में रामायण और महाभारत जैसे महान महाकाव्य शामिल हैं।

पवित्र और दार्शनिक लेखन के अलावा, कामुक और भक्ति गीत, दरबारी कविता, नाटक और कथात्मक लोककथाओं जैसी शैलियों का उदय हुआ। क्योंकि संस्कृत की पहचान वैदिक धर्म से की गई थी, बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने अन्य साहित्यिक भाषाओं (क्रमश: पाली और प्राकृत) को अपनाया।

भारतीय साहित्य का महत्त्व - भारतीय लेखक सामाजिक मुद्दों पर टिप्पणी करते हैं जैसे - अंधविश्वास, जातिवाद, गरीबी, अशिक्षा और कई अन्य सामाजिक बुराइयाँ जो भारतीय समाज को खा रही थीं। भारत ने उल्लेखनीय संचारकों को देखा है जिन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में महान जानकारीपूर्ण माध्यमों से नागरिकों को उन्नति के लिए प्रेरित किया है।

भारतीय साहित्य की विशेषताएँ - काव्य रूप

रामायण में 24,000 श्लोक हैं और महाभारत में 1,00,000 से अधिक श्लोक हैं जिन्हें समझने में पाठकों को आनंद की अनुभूति होती हैं जो हमारी समझ और विकास का मार्ग प्रस्तुत करते हैं। पवित्र ग्रंथ भी काव्यात्मक रूप में थे जिन्हें मंत्र कहा जाता है जिनका पूजा के दौरान पाठ किया जाता है। ये सभी भारतीय साहित्य की विशेषता हैं।

भारत के प्रथम कवि वाल्मीकि हैं। वाल्मीकि संस्कृत कविता के पहले रचनाकार थे, जिन्हें दुनिया भर में महाकाव्य रामायण के रचयिता के रूप में जाना जाता है। इसलिए उन्हें आदिकवि या भारत का प्रथम कवि कहा जाता है।

साहित्य के 13 तत्त्व शैली और भाषा, चरित्र, कथानक, चित्रण, पेसिंग, सेटिंग, तनाव, डिजाइन और लेआउट, मूड, सटीकता, स्वर, दृष्टिकोण और विषय सहित पुस्तक के विभिन्न तत्त्वों का मूल्यांकन करके मान्यता प्राप्त हैं।

शास्त्रीय साहित्य

शास्त्रीय भाषा ऐसी भाषा होती है जिनका कम से कम 1500-2000 वर्ष पुराना इतिहास हो, साहित्य/ग्रंथों एवं वक्ताओं की प्राचीन परंपरा हो और साहित्यिक परंपरा का उद्भव दूसरी भाषाओं से न हुआ हो। असमिया, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, गुजराती, डोगरी, तामिल, तेलुगू, नेपाली, पंजाबी, बांग्ला, बोड़ो, मणिपुरी, मराठी, मलयालम, मैथिली, संथाली, संस्कृत, सिंधी और हिंदी को भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में आधिकारिक भाषाओं के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। भारत सरकार ने छह भारतीय भाषाओं को 'शास्त्रीय भाषा' के रूप में सूचीबद्ध किया है।

पाली साहित्य

पाली साहित्य की नींव पहली शताब्दी ई. पू. प्राचीन भारत में पड़ी। धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथों की रचना पाली में हुई थी, जिनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण थेरवाद पंथ का त्रिपिटक है। इतिहास के अनुसार, थेरवाद बौद्ध भाषा का उल्लेख मगधी (प्राकृत की एक बोली) के रूप में करते हैं।

प्राकृत साहित्य

प्राकृत का उदय छठवीं शताब्दी में साहित्यिक भाषा के रूप में आमतौर पर प्राचीन भारत में क्षत्रिय राजाओं द्वारा किया गया था। प्राकृत का सबसे पहला प्रचलित मॉडल अशोक का शिलालेख है। प्राकृत भाषा का प्रारंभिक रूप पाली था, जो बौद्धों की भाषा थी, लेकिन जैनों ने पाली को सबसे अधिक प्रचलित किया।

नूतन आयाम

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 को आधार बनाते हुए, भारतीय कला संगीत और भाषा को एक नवीन स्वरूप में देखा जा सकता है।

भारत की शास्त्रीय भाषाओं और साहित्य के महत्व, प्रासंगिकता और सुंदरता को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। संस्कृत, संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित एक महत्त्वपूर्ण आधुनिक भाषा होते हुए भी इसका शास्त्रीय साहित्य इतना विशाल है कि सारे लैटिन और ग्रीक साहित्य को भी यदि मिलाकर इसकी तुलना की जाए तो भी इसकी बराबरी नहीं की जा सकती। संस्कृत साहित्य में गणित, दर्शन, व्याकरण, संगीत, राजनीति, चिकित्सा, वास्तुकला, धातु विज्ञान, नाटक, कविता, कहानी, और बहुत कुछ (जिन्हें 'संस्कृत ज्ञान प्रणालियों' के रूप में जाना जाता है), विशाल खजाने हैं। इन सबको जीवन के सभी क्षेत्रों और सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के लोगों द्वारा हजारों वर्षों में लिखा गया है।

भारत में तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, और ओड़िआ सहित अन्य शास्त्रीय भाषाओं में एक अत्यंत समृद्ध साहित्य है; इन शास्त्रीय भाषाओं के अतिरिक्त, पाली, फारसी, प्राकृत और उनके साहित्य को भी उनकी समृद्धि के लिए और भावी पीढ़ी के सुख और समृद्धि के लिए सरंक्षित किया जाना चाहिए। जैसे ही भारत पूरी तरह से विकसित देश बनेगा वैसे ही अगली पीढ़ी भारत के व्यापक और सुन्दर शास्त्रीय साहित्य के अध्ययन में रुचि से भाग लेना शुरू करेगी और एक सुसभ्य इंसान के रूप में समृद्ध बनना चाहेगी।

आज इन भारतीय कलाओं, संगीत शैलियों एवं भाषाओं का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है। तथा इन्हें पीढ़ी दर पीढ़ी आगे पहुँचाने की ज़रुरत है। हमारी ये गौरवशाली परंपराएँ हमें विश्व में एक अलग पहचान देती हैं, आत्म गौरव का एहसास कराती हैं और हमें असीम प्रेरणा और ऊर्जा देती हैं। भारत माँ की ये अनुपम विशेषताएँ हम भारतवासियों को विश्व-नेतृत्व हेतु सशक्त और सक्षम बनाती हैं। ❑

भारत की कला राष्ट्रीय एकता को स्थूल रूप में प्रकट करने का एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। समूचे देश की कलात्मक विशेषताएँ प्रायः एक जैसी हैं। मूर्तियों में समान लक्षण तथा मुद्राएँ देखने को मिलती हैं। विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियों को देखने के बाद ऐसा जान पड़ता है कि वे किसी देशव्यापी संस्था द्वारा तैयार करवाई गयी हैं। पर्वतों को काटकर बनवाये गये मन्दिरों अथवा पाषाण निर्मित मन्दिरों में यद्यपि कुछ स्थानीय विभिन्नताएँ हैं, तथा उनकी सामान्य शैली एक ही प्रकार की है। इनके माध्यम से भारतीय एकता की भावना साकार हो उठती है। इस प्रकार भारतीय कला राष्ट्रीय एकता की संदेश वाहिका है।

स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव और भारत पुनर्निर्माण

डॉ. मनीष कुमार

सहायक प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग-महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी (उ.प्र.)

स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव' भारत को स्वतंत्रता के 75 वर्ष पूर्ण होने पर भारत के लोगों में उनकी संस्कृति और उपलब्धियों के गौरवशाली इतिहास को याद करने के लिए और स्वतंत्रता के दिन को हर्षोल्लास के साथ मनाने के लिए भारत सरकार द्वारा की जाने वाली एक पहल है। स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक पहचान को प्रगति की ओर ले जाने वाली सभी चीजों का एक मूर्त रूप है। स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव की शुरुआत स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगांठ 12 मार्च 2021 को हुई जो कि 15 अगस्त 2023 को समाप्त होगी। स्वतंत्रता का यह महोत्सव भारतीय जनता के गौरवशाली इतिहास और स्वतंत्रता की लड़ाई में जिन सेनानियों और वीरों ने भूमिका निभाई, उन्हें समर्पित है। इस महोत्सव में देश की जनता के बहुआयामी विकास को ध्यान में रखते हुए लोगों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए 'आत्मनिर्भर भारत' जैसी योजनाओं की शुरुआत भी की गई है जिससे निम्न वर्ग के बेरोजगार युवकों को रोजगार के अवसर प्राप्त हो सकें। 'स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव' भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास पर बल देने का कार्य कर रहा है जिससे हम भारत का पुनर्निर्माण कर सकेंगे।

'स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव' का उद्देश्य भारत के सांस्कृतिक और सामाजिक विकास से जुड़े क्षेत्रों का विकास करना तथा इसे एक जन आंदोलन के रूप में खड़ा करना है। इस महोत्सव के अंतर्गत प्रधान मंत्री ने कुछ नए विषयों को भी जोड़ा जो निम्न प्रकार से हैं -

महिलाएँ एवं बच्चे - इसमें राष्ट्र के बेहतर भविष्य का निर्माण करने के लिए बच्चों के स्वस्थ्य और उनकी शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर ध्यान दिया गया है। महिलाएँ परिवार का अहम हिस्सा होती हैं तथा राष्ट्र निर्माण और स्वतंत्रता की लड़ाई में भी महिलाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसमें महिलाओं की शिक्षा और स्वास्थ्य की समस्याओं पर बल दिया गया है।

आदिवासी सशक्तीकरण - इसमें जनजातीय जननायकों और स्वतंत्रता सेनानियों के योगदान को श्रद्धांजलि देने के लिए स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव में बिरसा मुंडा की जयंती के दिन 15 नवम्बर को 'गौरव दिवस' के रूप में घोषित किया गया। इसके साथ ही जनजातीय पहचान, जनजातीय भाषाएँ, कला-संस्कृति, जनजातियों की शिक्षा और कौशल विकास से सम्बंधित योजनाओं को लागू करना।

जल - मनुष्य जीवन के लिए जल बहुमूल्य है उसके बिना जीवन संभव नहीं है। लगातार जल की कमी बढ़ी है और जल प्रदूषण की समस्याएँ भी काफी हद तक बढ़ी हैं। इन्हीं तमाम समस्याओं को ध्यान में रखते हुए जल संरक्षण और संवर्धन के लिए विभिन्न जल परियोजाओं को लागू किया है। जल संरक्षण और स्वस्च्छता सम्बन्धी अभियान भी चलाये जा रहे हैं। नदी, तालाब, पोखर, झरने आदि जल संसाधनों का संरक्षण और संवर्धन पर बल दिया गया है।

पर्यावरण के लिए जीवन शैली - यह पहल जलवायु परिवर्तन सम्मेलन के अवसर 'LIFE' नाम के अभियान से शुरू हुई जिसकी शुरुआत प्रधानमंत्री ने की थी।

यह पहल मनुष्य की जीवन शैली को प्रोत्साहित करने के लिय शुरू की गई जिससे प्राकृतिक संसाधनों के सावधानीपूर्ण उपयोग को बताया गया है। इससे लोग जलवायु परिवर्तन और समस्याओं में अपना योगदान दे सकेंगे।

स्वास्थ्य और कल्याण – इसमें भारत की प्राचीनकालीन आयुर्वेद, योग, होम्योपैथिक और प्राकृतिक चिकित्सा प्रणालियों पर बल दिया गया है। स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के निदान को ध्यान में रखा गया है जिसमें आधुनिक सुविधाओं से लैस अस्पताल, चिकित्सा उपकरण, दवाएँ, स्वास्थ्य बीमा, नैदानिक परीक्षण आदि को शामिल किया गया है। इस पहल में आयुष मंत्रालय ने भी अनेक कार्यक्रम आयोजित किये हैं। स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में आयुष, योग, आयुर्वेद को अधिक प्रोत्साहन मिला है। इससे लोगों को बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ सुलभ होने के साथ-साथ मानसिक तनाव भी कम हुए हैं। मूलरूप से इस पहल में स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का निदान किया गया जिससे एक स्वस्थ भारत का निर्माण हो सकेगा।

समावेशी विकास – इसमें देश की जनता की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार के विभिन्न अवसरों को प्रदान करना है। एक अच्छे समाज का निर्माण तभी संभव हो सकता है जब उसकी बुनियादी जरूरतें जैसे बिजली पानी आवास आदि पूरी होंगी। आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्ति इन्हीं बुनियादी जरूरतों को पूरा करते हुए सारा जीवन व्यतीत कर देता है और कभी भी सुख से नहीं रह पाता क्योंकि बुनियादी जरूरतों के आभाव में आर्थिक स्थिति में सुधार हो पाना बहुत मुश्किल होता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने विभिन्न योजनाओं के माध्यम से बिजली, पानी और आवास की समुचित सुविधाएँ उपलब्ध कराई हैं जिससे निम्न वर्ग के लोग भी सामान्य जीवन व्यतीत कर सकें।

आत्मनिर्भर भारत – इसका मुख्य लक्ष्य देश के प्रत्येक बेरोजगार, युवाओं, गरीब और मजदूर वर्ग को आत्मनिर्भर बनाना है। आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने के लिए डिजिटल पेमेंट, युवा और उद्यमिता के साथ स्टार्टअप योजनाओं का निर्माण, वोकल फॉर लोकल, मेड इन इण्डिया आदि विषयों पर ध्यान दिया गया है। आत्मनिर्भर भारत एक ऐसी योजना है जिसमें लोगों को आर्थिक रूप से सबल बनाने के लिए विभिन्न अवसरों को प्रदान करने के लिए विभिन्न सरकारी और सहकारी संस्थाओं के माध्यम से ऋण उपलब्ध कराना। पशुपालन, मुर्गीपालन और लघु उद्योगों आदि को बढ़ावा देने से लोगों की आर्थिक स्थिति में काफी सुधार हुए हैं। इससे लगता है कि हम एक नए भारत की तस्वीर निर्मित करने में सफल हो रहे हैं।

स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव की शुरुआत स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगांठ 12 मार्च 2021 को हुई जो कि 15 अगस्त 2023 को समाप्त होगी। स्वतंत्रता का यह महोत्सव भारतीय जनता के गौरवशाली इतिहास और स्वतंत्रता की लड़ाई में जिन सेनानियों और वीरों ने भूमिका निभाई, उन्हें समर्पित है। इस महोत्सव में देश की जनता के बहुआयामी विकास को ध्यान में रखते हुए लोगों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए 'आत्मनिर्भर भारत' जैसी योजनाओं की शुरुआत भी की गई है जिससे निम्न वर्ग के बेरोजगार युवकों को रोजगार के अवसर प्राप्त हो सकें। 'स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव' भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास पर बल देने का कार्य कर रहा है जिससे हम भारत का पुनर्निर्माण कर सकेंगे।

सांस्कृतिक गौरव – भारत एक बहुसांस्कृतिक देश है जिसमें एक साथ कई धर्म, जाति, समुदाय और संस्कृतियों के लोग निवास करते हैं। भारतीय संस्कृति दुनिया की सबसे प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। आधुनिक विकास ने भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया है जिसके कारण हमारी सांस्कृतिक धरोहर धीरे-धीरे नष्ट हो रही है जिससे सांस्कृतिक विघटन बढ़ रहा है। हमारी संस्कृति से जुड़ी परम्परों को लोग भूलते जा रहे हैं। इन्हीं तमाम समस्याओं को ध्यान में रखकर सरकार ने भारतीय संस्कृति के संरक्षण के लिए भारतीय साहित्य के प्रचार-प्रसार पर बल देना प्रारंभ किया है। संस्कृति के विभिन्न रूपों जैसे- भाषा, साहित्य, लोकगीत, लोककलाएँ, संगीत, नृत्य आदि को महत्त्व दिया है। इससे भारतीय संस्कृति की पहचान को बरकरार रखा जा सके।

एकता – भारत एक विशाल देश है जिसमें विभिन्न समुदाय के लोग निवास करते हैं। इस पहल का मुख्य स्लोगन 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' के माध्यम से सभी भारतवासियों को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास किया जा रहा है। इसमें नागरिकों को अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक करना और उनका निर्वहन करने के लिए प्रेरित करना आदि शामिल है।

'स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव' के माध्यम से देश ने विभिन्न विकास योजनाओं को लागू किया है जिससे देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि में विकास हुआ है। आज देखा जाए तो हम पहले से अच्छी स्थिति में हैं विभिन्न आधुनिक सुविधाओं से जीवन जीने के लिए कई रास्ते खुले हैं। गरीब वर्ग की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। देश की जनता के विकास से ही एक स्वस्थ्य समाज और आत्मनिर्भर भारत का निर्माण किया जा सकता है। ❑

प्राचीन भारतीय चौंसठ कलाएँ

डॉ. धनंजय कुमार मिश्र

विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग सिदो कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका (झारखण्ड)

भारतीय संस्कृति में भगवान् शिव को कलाधर तथा बुद्धिप्रदायिनी सरस्वती को कला की देवी कहा गया है। पूजा, अर्चना या यज्ञ करते समय आवश्यक सामग्रियों में 'कलावा' का अद्‌भुत महत्त्व है। कच्चे सूत का यह 'कलावा' हमें कला की महत्ता का स्मरण कराता है। कलावा को कलाई में बाँधकर हम कलापूर्ण होने का व्रत लेते हैं तथा संकल्प करते हैं कि जीवन में हम आगे बढ़ेंगे। भारतीय मनीषियों ने मन, वचन और कर्म को श्रेष्ठता के क्रम से रखा है। करमूल यानी कलाई हमारे हाथों का आधार सिद्ध होती है। हमारे अन्दर छिपी कला के भावों को मूर्त रूप देने में सहायक बनती है।

भर्तृहरि अपने नीतिशतकम् में कहते हैं कि –

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः
साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्
भागधेयं परमं पशूनाम्।।

अर्थात् मनुष्य योनि में जन्म लेकर जो साहित्य-संगीत-कला से अपरिचित रहता है, उसका मनुष्य होना ही व्यर्थ है। वास्तव में ऐसा मनुष्य नराकार पशु ही है।

प्राचीन काल में भारतवर्ष विश्वगुरु की महती उपाधि से विभूषित था इसके पीछे एक महत्त्वपूर्ण कारण यहाँ की उन्नत और व्यापक शिक्षा व्यवस्था भी थी। भारतीय प्राचीन शिक्षा व्यवस्था अत्यन्त व्यापक थी। शिक्षा के अन्तर्गत सिर्फ शास्त्रीय ज्ञान ही नहीं अपितु जीवनोपयोगी लौकिक ज्ञान का भी सम्यक् समावेश था। लोकोपयोगी ज्ञान के अन्तर्गत शिक्षा में कलाओं की शिक्षा भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती थी। आर्ष ग्रन्थों यथा रामायण, महाभारत के अतिरिक्त पुराणों और काव्यग्रन्थों में अनेक कलाओं का वर्णन प्राप्त होता है। कलाएँ अनन्त हैं। सबके नाम भी नहीं गिनाये जा सकते। संस्कृत वाङ्‌मय में कलाओं की चौंसठ संख्या के बारे में अनेक विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद आठ अष्टकों में विभाजित है और प्रत्येक अष्टक में आठ-आठ अनुवाक हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण ऋग्वेद चौंसठ अनुवाकों में विभक्त होने के कारण और उसकी महत्ता प्रकट करने की दृष्टि से कलाओं की संख्या चौंसठ ही मानी गई है। भाव यह है कि जिस प्रकार सम्पूर्ण ऋग्वेद 64 अनुवाकों (भागों) में विभक्त है उसी प्रकार समस्त कलाएँ 64 ही हैं।

शुक्राचार्य के 'नीतिसार' और वात्स्यायन मुनि के 'कामसूत्र' में चौंसठ

प्राचीन भारतीय चौंसठ कलाएँ हैं गायन, वादन, नर्तन, नाट्य, आलेख्य (चित्रकला), विशेषक, अल्पना, पुष्पशय्यानिर्माण, अंगरागादिलेपन, पच्चीकारी, शयनरचना, उदकवाद्य, जलाघात, रूपबनाना, मालागूँथना, मुकुट बनाना, वेश बदलना, कर्णाभूषण बनाना, जादुगरी, असुन्दर को सुन्दर बनाना, हस्तलाघव, पाककला, आननक, सुचीकर्म, पहेली बुझाना, पुस्तकवाचन, नाट्याख्यायिका - दर्शन, काव्यसमस्यापूर्ति, बेंत की बुनाई, तुर्ककर्म, बढ़ईगिरि, वास्तुकला, रत्नपरीक्षा, धातुकर्म, रत्नों की रंग परीक्षा, आकरज्ञान, उपवनविनोद, पक्षी लड़ाना, पक्षियों की बोली सिखाना, मालिशकरना, केश मार्जन कौशल, गुप्तभाषा ज्ञान, विदेशी कलाओं का ज्ञान, देशी भाषाओं का ज्ञान, भविष्य कथन, कठपुतली नर्तन, कठपुतली के खेल, सुनकर दोहरा देना, आशुकाव्य क्रिया, भाव को उल्टा कहना, छलिकयोग, वस्त्रगोपन, द्यूतविद्या, आकर्षण क्रीड़ा, बालक्रीड़ाकर्म, शिष्टाचार, वशीकरण और व्यायाम।

कलाओं का वर्णन विस्तार से प्राप्त होता है। आचार्य वात्स्यायन ने कामसूत्र में जिन चौंसठ कलाओं का उल्लेख किया है, उन सभी कलाओं के नाम यजुर्वेद के तीसरे अध्याय में भी मिलते हैं। तन्त्रग्रन्थों में भी चौंसठ कलाओं का उल्लेख है। बौद्ध ग्रन्थ 'ललितविस्तर' में पुरुषकला के रूप में छियासी और कामकला के रूप में चौंसठ कलाओं का उल्लेख है। ललित विस्तर में जिन कलाओं का उल्लेख है, कामसूत्रादि में प्रतिपादित कलाएँ संख्या और स्वरूप में उनसे भिन्न हैं। प्रबन्धकोश में कलाओं की संख्या बहत्तर निर्दिष्ट हैं। संस्कृत के प्रसिद्ध कवि और आलोचक क्षेमेन्द्र ने 'कलाविलास' नामक ग्रन्थ में कलाओं की सर्वाधिक संख्या दी है। उसमें चौंसठ कलाएँ लोकोपयोगी हैं। जिनमें बत्तीस कलाएँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थचतुष्टय की हैं। अन्य बत्तीस कलाएँ शील, स्वभाव, मात्सर्य और मान की हैं। इनके अतिरिक्त पश्यतोहरों (सुनारों) की चौंसठ कलाएँ, वेश्याओं की नागरिकों को रिझाने की चौंसठ कलाएँ, भेषज से सम्बन्धित दस कलाएँ और कायस्थों के लेखन-कौशल और उनसे सम्बन्धित सोलह कलाएँ हैं। ज्योतिषियों अर्थात् गणकों से सम्बन्धित कलाओं का भी उल्लेख क्षेमेन्द्र ने किया है। वास्तव में क्षेमेन्द्र ने कलानिरूपण में परम्पराओं का मात्र निर्वहण किया है। क्षेमेन्द्र के अनुसार कलाओं का मुख्य उद्देश्य धर्मादि पुरुषार्थचतुष्ट्य का साधनमात्र था। जैनग्रन्थ 'कल्पसूत्र' की टीका में भी चौंसठ कलाओं का उल्लेख है, जिन्हें 'महिलागुण' कहा गया है। चौंसठ कलाओं की उत्पत्ति का आख्यान 'कालिकापुराण' नामक जैनग्रन्थ में वर्णित है।

वादन, गायन, नीतिसार के चौथे अध्याय के तीसरे प्रकरण के अनुसार 64 कलाएँ हैं -

नर्तन, नाट्य, आलेख्य (चित्रकला), विशेषक, अल्पना, पुष्पशय्यानिर्माण, अंगरागादिलेपन, पच्चीकारी, शयनरचना, उदकवाद्य, जलाघात, रूपबनाना, मालागूँथना, मुकुट बनाना, वेश बदलना, कर्णाभूषण बनाना, जादुगरी, असुन्दर को सुन्दर बनाना, हस्तलाघव, पाककला, आननक, सुचीकर्म, पहेली बुझाना, पुस्तकवाचन, नाट्याख्यायिका-दर्शन, काव्य समस्यापूर्त्ति, बेंत की बुनाई, तुर्ककर्म, बढ़ईगिरी, वास्तुकला, रत्नपरीक्षा, धातुकर्म, रत्नों की रंग परीक्षा, आकरज्ञान, उपवनविनोद, पक्षी लड़ाना, पक्षियों की बोली सिखाना, मालिशकरना, केश मार्जन कौशल, गुप्तभाषा ज्ञान, विदेशी कलाओं का ज्ञान, देशी भाषाओं का ज्ञान, भविष्य कथन, कठपुतली नर्तन, कठपुतली के खेल, सुनकर दोहरा देना, आशुकाव्य क्रिया, भाव को उल्टा कहना, छलिकयोग, वस्त्रगोपन, द्यूतविद्या, आकर्षण क्रीड़ा, बालक्रीडाकर्म, शिष्टाचार, वशीकरण और व्यायाम।

श्रीमद्‌भागवत पुराण के टीकाकार श्रीधरस्वामी ने भी दशम स्कन्ध के 43वें अध्याय के 64वें श्लोक की टीका में अनेक प्रकार की कलाओं का नामोल्लेख किया है परन्तु इसमें कुछ ही नीतिसार में वर्णित कलाओं से मिलती हैं शेष भिन्न हैं। संस्कृत का प्रसिद्ध वाङ्मय 'शिवतत्त्वरत्नाकर' में जिन चौंसठ कलाओं का वर्णन मिलता है वे भी नीतिसार में निर्दिष्ट कलाओं से कुछ अलग ही हैं। शिवतत्त्वरत्नाकर के अनुसार चौंसठ कलाएँ इस प्रकार हैं- इतिहास, आगम, काव्य, नाटक, अलंकार, गायकत्व, कवित्व, कामशास्त्र, दुरोदर,

देशभाषा लिपिज्ञान, लिपिकर्म, वाचन, गणक, व्यवहार, स्वरशास्त्र, शाकुन, सामुद्रिक, रत्नशास्त्र, गज-अश्व-रथ कौशल, मल्लशास्त्र, सूपकर्म, भूरूहदोहद, गन्धवाद, धातुवाद, रत्नसम्बन्धी खनिवाद, बिलवाद, अग्निसंस्तम्भक, जलसंस्तम्भक, वाचः स्तम्भन, वयः स्तम्भन, आकर्षण, मोहन, विद्वेषण, उच्चाटन, मारण, कालवंचन, स्वर्णकार, परकायप्रवेश, पादुकासिद्धि, वाक्सिद्धि, गुटिकासिद्धि, ऐन्द्रजालिक, अंजन, परदृष्टिवंचन, स्वरवंचन, मणि-मन्त्र औषधादिकीसिद्धि, चौरकर्म, चित्रक्रिया, लौहक्रिया, अश्मक्रिया, मृत्क्रिया, दारूक्रिया, वेणुक्रिया, चर्मक्रिया, अम्बरक्रिया, अदृश्यकरण, दन्तिकरण, मृगयाविधि, वाणिज्य, पाशुपाल्य, कृषि, आसवकर्म और लावकुक्कुट मेषादियुद्धकारक कौशल।

आचार्य वात्स्यायन मुनि प्रणीत कामसूत्र और इस पर लिखित जयमंगलाटीका में वर्णित कलाओं पर दृष्टिपात करने पर चौंसठ कलाओं की सम्यक् स्थिति स्पष्ट होती है। कामसूत्र के साधारण अधिकरण के तृतीय अध्याय के विद्यासमुद्देश्य प्रकरण में चौंसठ कलाओं और इनकी शिक्षा का वर्णन मिलता है। वात्स्यायन मुनि चौंसठ कलाओं को चतुःषष्टिविद्या कहते हैं। उनके अनुसार गीत, नृत्य, वाद्य, आलेख्य, विशेषच्छेद, तण्डुलकुसुमावलिविकार, पुस्पास्तरण, दशनवसनांगराग, मणिभूमिकाकर्म, शयन-रचना, उदक-वाद्य, उदकाघात, चित्रयोग, माल्यग्रन्थन, शेखरकापीडयोजना, नेपथ्य प्रयोग, कर्णपत्रभंग, गन्धयुक्ति, भूषणयोजना, ऐन्द्रजालयोग, कौचुमार-प्रयोग, हस्तलाघव, विचित्रशाकयूष-भक्ष्यविकार क्रिया, पानकरसरागा-सवयोजन, सूचीवान कर्म, सूत्रक्रीडा, वीणाडमरूवाद्य, प्रहेलिका, प्रतिमाला, प्रतिमाला, दुर्वाचकयोग, पुस्तकवाचन, नाटकाख्यायिकादर्शन, काव्यसमस्यापूर्ति, पट्टिकावेत्रवान्, तक्षकर्म, तक्षण, वास्तुविद्या, धातुवाद, रूप्यपरीक्षा, मणिरागाकरज्ञान, वृक्षायुर्वेद, वृक्षायुर्वेद, मेषकुक्कुटलावकयुद्ध, शुकसारिका-प्रलापन, उत्साह-संवाहन-केशमर्दन, अक्षरमुष्टिकाकथन, म्लेच्छितविकल्प, देशभाषाविज्ञान, पुष्पकटिका, निमित्तज्ञान, यन्त्रमातृका, धारणमातृका, सम्पाठ्य, मानसीकाव्यक्रिया, अभिधानकोश, छन्दोविज्ञान, क्रियाकल्प, छलितकयोग, वस्त्रगोपन, द्यूतविशेष, आकर्षक्रीडा, बालक्रीडनक, वैनयिकी विद्याज्ञान और व्यायामिकी विद्या चतुःषष्टिविद्या या चौंसठ कलाएँ हैं । वाभ्रव्य के मतानुसार चौंसठ कलाएँ इस प्रकार हैं -

स्पृष्टक, विद्धक, उद्धृष्टक, पीडितक, लतावेष्टितक, वृक्षाधिरूढक, तिलतण्डुलक, क्षीर-नीरक, निमित्तक, स्फुरितक, घट्टितक, सम, तिर्यक्, उद्भ्रान्त, आपीडित, अवपीडितक, आच्छुरितक, अर्धचन्द्र, मण्डल, रेखा, व्याघ्रनख, मयूरपदक, शशप्लुतक, उत्पलपत्रक, गूढक, उच्छूनक, बिन्दु, प्रवालमणि, मणिमाला, बिन्दुमाला, खण्डाभ्रक, वराहचर्वित, वराहचर्वित, उत्फुल्लक, विजृम्भितक, इन्द्राणी, सम्पुटक, पीडितक, वेष्टितक, बाडवक, अपहस्तक, प्रसृतक, मुष्टि, समतल, कीला, कर्त्तरी, विद्धा, सन्दंशिका, उपसृप्त, मन्थन, हुल, अवमर्दन, निर्घात, वराहघात, वृषाघात, चटकविलसित, सम्पुट, निमित्त, पार्श्वतोदष्ट, बहिःसन्दंश, अन्तःसन्दंश, चुम्बितक, परिमृष्टक, आम्रचूषितक और संगर। वाभ्रव्य के द्वारा कही गई ये चौंसठ कलाएँ कामकलाओं के अन्तर्गत आती हैं।

स्पष्ट हो चुका है कि चौंसठ कलाओं के अन्तर्गत दो प्रकार की कलाओं का निर्देश मिलता है। संगीतादि चौंसठ कलाएँ, जिनका उपयोग किसी कन्या या स्त्री के सुगृहिणी बनने के लिए उपयोगी कहा गया है जबकि चौंसठ कामकलाएँ जिनका उपयोग दाम्पत्य जीवन में परमसुख या आनन्द की प्राप्ति के लिए कहा गया है।

प्राचीन काल से भारत में जिन चौंसठ कलाओं का उल्लेख है वे पुरूषार्थ चतुष्टय के अन्तर्गत तृतीय पुरूषार्थ 'काम' की अंगभूत विद्याएँ हैं। स्त्री-पुरुष दोनों के लिए ये विद्याएँ उपयोगी हैं अतः दोनों को इन्हें सीखने-पढ़ने का निर्देश दिया गया है। ये विद्याएँ पुरूषार्थ चतुष्टय की साधिका हैं। व्यावहारिक जीवन की अभ्युन्नति एवं सफलता के लिए इन विद्याओं का अध्ययन आवश्यक माना जाता रहा है। इन कलाओं की व्यापक उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए ही सामाजिक जीवन के लिए राज्य की ओर से अनेक कला-केन्द्रों की व्यवस्था की

जाती थी। आज भी ऐसे केन्द्र प्रचलन में हैं। अनेक ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि प्राचीन काल में कला के इच्छुक स्त्री-पुरुषों को सुयोग्य आचार्यों द्वारा विविध कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। कई ऐसे कला-केन्द्र थे जहाँ स्त्री-पुरुष व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से कलाओं की शिक्षा ग्रहण करते थे और अपनी कलाओं का उत्कृष्ट प्रदर्शन किया करते थे।

सामाजिक जीवन में कलाओं का व्यापक प्रभाव, सम्मान एवं प्रचार था। हमारे शास्त्रों के अनुसार कुछ भी न बोल पाने वाला गूँगा व्यक्ति भी जिसे करने में समर्थ हो जाए, उसे कला कहते हैं। ऐसा हमारे प्राचीन ग्रन्थों में कहा गया है। जीवन को सुखपूर्वक जीने के लिए, जिन्दगी को बेहतर बनाने के लिए हुनर व कौशल की आवश्यकता होती है। यह कला बुद्धि, विवेक व अभ्यास से आती है। धन-सम्पदा, साधन-सुविधाएँ उसके उपार्जन में सहायक तो हो सकती हैं किन्तु सब कुछ नहीं। इसीलिए कलाहीन को असभ्य कहा जाता है। ऐसा व्यक्ति कल्पनाहीन होता है, रुचिसंपन्न नहीं होता।

मन पर संयम, पूर्ण स्वास्थ्य और सच्ची प्रसन्नता के लिए जीने की कला का जानना जरूरी है। भोगमात्र को जीवन का लक्ष्य मानने वाले यह कला नहीं सीख सकते। जीवन जीने की कला का सीधा सम्बन्ध अपने अन्दर व समाज में सद्वृत्तियों के संवर्धन व दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन से होता है। हमारे हर काम में उत्कृष्टता हो, हमारे हर ख्याल में बेहतरी हो ताकि जिन्दगी को प्रसन्नता पूर्वक जिया जा सके।

चौंसठ कलाओं को मुख्यतः पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

1. चारू (ललितकला) – नृत्य, गीत, वाद्य, चित्रकला, प्रसाधन आदि कलाएँ चारू अर्थात् ललितकला के अन्तर्गत आती हैं।

2. कारू (उपयोगी कलाएँ) – नाना प्रकार के व्यंजन बनाने की कला, कढ़ाई, बुनाई, सिलाई की कला तथा कुर्सी, चटाई आदि बुनने की कलाएँ 'कारू' वर्ग के अन्तर्गत आती हैं।

3. औपनिषदिक कलाएँ – औपनिषदिक कलाओं के अन्तर्गत वाजीकरण, वशीकरण, मारण, मोहन, उच्चाटन, यन्त्र, मन्त्रों एवं तन्त्रों के प्रयोग, जादू-टोना आदि से सम्बन्धित कलाओं का परिगणन किया जा सकता है।

4. बुद्धिवैचक्षण्य कलाएँ – इसके अन्तर्गत पहेली बुझाना, अन्त्याक्षरी, समस्यापूर्ति, क्लिष्ट काव्य रचना, शास्त्रज्ञान, भाषाज्ञान, वाक्पटुता, भाषणकला, भेड़-मुर्गा-तीतर-बटेर आदि को लड़ाने की कला, तोता-मैनादि पक्षियों को बोली सिखाने की कला आदि का समावेश होता है।

5. क्रीड़ा-कौतुक – क्रीड़ाकौतुक के अन्तर्गत द्यूतक्रीड़ा, शतरंज, व्यायाम, नाट्यकला, जलक्रीड़ा, आकर्षक्रीड़ा आदि से सम्बन्धित कलाओं का परिगणन किया जा सकता है।

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि विभिन्न संस्कृत वाङ्मयों में वर्णित चौंसठ कलाएँ न केवल प्राचीन काल में उपयोगी रही हैं अपितु वर्तमान काल में भी इसकी उपयोगिता और आवश्यकता बरकरार है। यद्यपि चौंसठ कलाओं की शिक्षा प्राचीन कालीन ग्रन्थों में महिलाओं के लिए विशेष उपयोगी कहा गया पर आज के दौर में यह लिंग, वर्ण, स्थान, जाति की सीमा को तोड़ते हुए सर्व सामान्य के लिए उपयोगी है। साथ ही भारतवर्ष की इन प्राचीन कलाओं को विशिष्ट रूप से संरक्षित करते हुए भावी पीढ़ी को इसे सिखाने की जिम्मेदारी भी हमारी बनती है। कला हमारे अन्दर कर्मण्यता का भाव जगाती है। हमें कर्मशील बनाती है। इसलिए कर्म को पूजा का पर्याय कहा जाता है। जीवन को कर्मक्षेत्र कहा जाता है। इसलिए जीवन जीने के लिए शैली नियमों एवं नीति की आवश्यकता होती है। उचित उपाय और तरीके हमारे जीवन को सुन्दर तथा सफल बनाते हैं, बशर्ते हम वह कला जानते हों, जो जीवन जीने के लिए जरूरी है। यदि शिक्षा, ज्ञान, अनुभव तथा नया व अच्छा सीखने की ललक हो तो जीवन जीने की कला आसानी से समझ में आती है, सीखी जा सकती है। इसके लिए सद्गुणों व सदाचरण की आवश्यकता पड़ती है। दुर्गुणों से दूर रहकर व्यसनों को तिलांजलि देनी पड़ती है। सुजीवन का अभिलाषी बनकर सद्बुद्धि बनाए रखने को सजग सचेष्ट रहना पड़ता है। ❑

'भारत निर्माण कार्यक्रम' और नया भारत

डॉ. संतोष नांदल

पूर्व प्रोफेसर,
प्रमुख और निदेशक, महर्षि
दयानंद विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

भारत जैसे विकासशील देशों में जीवन स्तर को सुधारने में ग्रामीण बुनियादी ढाँचे का विकास एक महत्त्वपूर्ण घटक है। भारत में, मोदी सरकार ने ग्रामीण बुनियादी ढाँचे के विकास में योगदान देने के लिए कई उपाय किए हैं, जिससे भारत निर्माण की शुरुआत हुई है। चूंकि 70 प्रतिशत से अधिक भारतीय आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है, प्रति व्यक्ति आय के निम्न स्तर के साथ, ग्रामीण बुनियादी ढाँचे में सुधार पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। इंफ्रास्ट्रक्चर सेक्टर का कृषि और औद्योगिक क्षेत्रों के साथ बैकवर्ड और फॉरवर्ड दोनों तरह का संबंध है और इसलिए इस सेक्टर का विकास अर्थव्यवस्था के समग्र विकास के लिए एक शर्त है। सामान्य रूप से बुनियादी ढाँचा और विशेष रूप से ग्रामीण बुनियादी ढाँचा उत्पादकता बढ़ाकर और जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने वाली सुविधाएँ प्रदान करके आर्थिक विकास में योगदान देता है। ग्रामीण बुनियादी ढाँचे के मुद्दे को हल करने के लिए मोदी सरकार ने भारत निर्माण (2005) के तहत एक समयबद्ध कार्यक्रम शुरू किया और सड़क, सिंचाई, आवास, जल आपूर्ति, विद्युतीकरण और दूरसंचार कनेक्टिविटी को बढ़ावा देने के लिए स्वतंत्र योजनाएँ हैं।

भारत निर्माण के मुख्य उद्देश्य

भारत निर्माण कार्यक्रम का उद्देश्य बुनियादी ग्रामीण बुनियादी ढाँचा तैयार करना है। इसमें सड़कों के निर्माण, सिंचाई, आवास, जल आपूर्ति अवसंरचना, दूरसंचार कनेक्टिविटी और विद्युतीकरण के लिए परियोजनाएँ शामिल हैं। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण बुनियादी ढाँचे का विकास करना है। ग्रामीण विकास मंत्रालय इस योजना को नियंत्रित करता है। 174000 करोड़ के अनुमानित व्यय के साथ इस योजना को लागू करने की अवधि चार साल के लिए निर्धारित की गई है। प्रमुख छः क्षेत्र और उनके लक्ष्य हैं -

1. सिंचाई : 2009 तक अतिरिक्त एक करोड़ हेक्टेयर भूमि के लिए सिंचाई सुनिश्चित करना। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई) को 2015-16 के दौरान केंद्र सरकार द्वारा लंबे समय से लंबित सिंचाई परियोजनाओं को पूरा करने, हर खेत को पानी (एचकेकेपी)- कमान क्षेत्र विकास और जल प्रबंधन (सीएडीडब्ल्यूएम), सतही लघु सिंचाई (एसएमआई) सुनिश्चित करने के लिए शुरू किया गया था। देश में सभी कृषि फार्मों के लिए सुरक्षात्मक सिंचाई के कुछ साधनों तक पहुँच सुनिश्चित करने और 'प्रति बूंद अधिक फसल' का उत्पादन करने के लिए व्यापक दृष्टिकोण के साथ जल निकायों और भूजल सिंचाई की मरम्मत, नवीनीकरण और बहाली (आरआरआर) वांछित ग्रामीण समृद्धि।

2. सड़कें - 1000 की आबादी वाले सभी गाँवों को सड़कों से जोड़ना और 500 तक की आबादी वाले सभी अनुसूचित जनजाति और पहाड़ी गाँवों को सड़कों से जोड़ना। दिसंबर 2012 तक भारत निर्माण के तहत कुल 63940 बस्तियों में से 47354 बस्तियों को जोड़ा जा चुका है जबकि 60421 बस्तियों के लिए काम स्वीकृत किया गया है।

3. आवास - गरीबों के लिए 60 लाख अतिरिक्त आवासों का निर्माण। भारत निर्माण कार्यक्रम चरण-I के तहत, चार वर्षों के दौरान यानी 2005-06 से 2008-09 तक पूरे देश में आवास योजना के तहत 60 लाख घरों के निर्माण की परिकल्पना की गई थी। इस लक्ष्य के विरुद्ध 71.76 लाख आवासों का निर्माण

'भारत निर्माण' के माध्यम से भारी निवेश ग्रामीण अर्थव्यवस्था को समृद्ध करता है और गाँवों में विकास लाभ फैलाकर ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच अंतर को कम करता है। भारत निर्माण के घटक गरीबी को कम करने, लाभकारी रोजगार, सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने और स्वास्थ्य, स्वच्छता, शिक्षा और स्वच्छता के स्तर को बढ़ाने में सहायक थे। पंचायती राज के माध्यम से ग्रामीण विकास मंत्रालय ने ग्रामीण विकास के माध्यम से पेयजल, ग्रामीण सड़क, स्वच्छता टेली-कॉम कनेक्टिविटी, कृषि, सूचना प्रौद्योगिकी और भूमि संसाधनों का विस्तार किया।

21720.39 करोड़ रुपये के व्यय से किया गया। भारत निर्माण के तहत दूसरे चरण का लक्ष्य 5 साल (2009-10 से 2013-14) की अवधि में 120 लाख घरों का है। पहले तीन वर्षों के दौरान 85.72 लाख से अधिक घरों का निर्माण किया गया है।

4. जलापूर्ति – हर बस्ती में पीने के पानी का सुरक्षित स्रोत होना चाहिए जिसके लिए 2009 तक 55,067 बिना ढकी बसावटों को कवर किया जाना है। गुणवत्ता की समस्याओं का समाधान किया जाए। शेष सभी 74000 गाँवों में पेयजल सुनिश्चित करना।

5. विद्युतीकरण – शेष सभी 125000 गाँवों में बिजली पहुँचाना एवं 2.3 करोड़ घरों को बिजली कनेक्शन देना। नेशनल थर्मल पावर कॉरपोरेशन लिमिटेड (एनटीपीसी), पावर ग्रिड कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (पीजीसीआईएल), नेशनल हाइड्रो इलेक्ट्रिक पावर कॉरपोरेशन लिमिटेड (एनएचपीसी) और दामोदर वैली कॉरपोरेशन (डीवीसी) जैसे केंद्रीय सेवा उपक्रमों की सेवाएँ ग्रामीण परियोजनाओं के निष्पादन के लिए उपलब्ध कराई जाएँगी। विद्युतीकरण परियोजनाएँ। इन सीपीएसयू को प्रत्येक राज्य में जिले आवंटित किए गए हैं जहाँ वे ग्रामीण विद्युतीकरण नेटवर्क को लागू करेंगे। योजना के तहत परियोजनाओं की कुल लागत के लिए 90 प्रतिशत पूंजीगत अनुदान प्रदान किया जाएगा। गरीबी रेखा से नीचे के गैर-विद्युतीकृत परिवारों के विद्युतीकरण को सभी ग्रामीण बस्तियों में 100 प्रतिशत पूंजीगत सब्सिडी के साथ 1500 रुपये प्रति कनेक्शन पर वित्तपोषित किया जाएगा।

6. ग्रामीण दूरसंचार – भारत निर्माण कार्यक्रम का महत्त्वपूर्ण घटक था। भारत निर्माण कार्यक्रम से 2007 के अंत तक सभी गाँवों को बेहतर दूरसंचार कनेक्टिविटी प्रदान करने की उम्मीद थी। दूरसंचार और सूचना प्रौद्योगिकी विभाग के पास 14,183 दूरदराज के गाँवों सहित 66822 गाँवों को टेलीफोन कनेक्टिविटी प्रदान करने की जिम्मेदारी है। सार्वभौमिक दूरसंचार सेवाओं के दायित्व के कार्यान्वयन का मुख्य उद्देश्य ग्रामीणों को इंटरनेट, वॉयस मेल और ई-मेल सेवा जैसी सार्वभौमिक सेवाएँ प्रदान करने के माध्यम से उठाया गया था। यह काम सरकार ने टेलीकॉम सर्विस प्रोवाइडर कंपनी भारत संचार निगम लिमिटेड को सौंपा था। इस कार्यक्रम के सफल कार्यान्वयन से (2007-2011) की अवधि के दौरान टेली घनत्व 15.11 से 33.00 (प्रति 1000) तक बढ़ गया। भारत निर्माण के दूसरे चरण (2009-2012) के दौरान अधिकांश पंचायतों को बीएसएन लिमिटेड कंपनी द्वारा ब्रॉडबैंड सुविधा से जोड़ा गया था। देश के कमजोर समाज को सशक्त बनाने के लिए, मोदी सरकार ने जन धन खाते, आयुष्मान भारत योजना, सूक्ष्म बीमा योजना, डीबीटी (डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर) आधारित सुधार, पीएम उज्ज्वला योजना और पीएम आवास योजना सहित कई योजनाएँ शुरू कीं।

आत्मनिर्भर भारत अभियान – आत्मनिर्भर भारत अभियान भारत को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में भारत सरकार द्वारा 13 मई 2020 को शुरू किया गया मिशन है। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने महामारी के समय में देश का समर्थन करने के लिए सहायता के रूप में 20 लाख करोड़ रुपये के आर्थिक पैकेज की घोषणा की। यह 5 घटकों पर केंद्रित है – अर्थव्यवस्था, बुनियादी ढाँचा, सिस्टम, जीवंत जनसांख्यिकी और माँग। जनजातीय मामलों का मंत्रालय (एमओटीए) आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने वाली परियोजनाओं और नीतियों की परिकल्पना के माध्यम से आत्मनिर्भर भारत अभियान को सक्रिय रूप से आगे बढ़ा रहा है और भारत के आदिवासी समुदाय के लिए स्वयं-सृजन कर रहा है।

निष्कर्ष : (2005-2012) के दौरान 'भारत निर्माण' के माध्यम से भारी निवेश ग्रामीण अर्थव्यवस्था को समृद्ध करता है और गाँवों में विकास लाभ फैलाकर ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच अंतर को कम करता है। भारत निर्माण के घटक गरीबी को कम करने, लाभकारी रोजगार, सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने और स्वास्थ्य, स्वच्छता, शिक्षा और स्वच्छता के स्तर को बढ़ाने में सहायक थे। पंचायती राज के माध्यम से ग्रामीण विकास मंत्रालय ने ग्रामीण विकास के माध्यम से पेयजल, ग्रामीण सड़क, स्वच्छता टेली-कॉम कनेक्टिविटी, कृषि, सूचना प्रौद्योगिकी और भूमि संसाधनों का विस्तार किया। भारत निर्माण के मुख्य सिद्धांत ग्रामीण आबादी के लिए बुनियादी ढाँचे का निर्माण करना और इस प्रमुख कार्यक्रम की बारीकी से निगरानी करने और समझने के लिए विभिन्न विभागों के बीच समन्वय बनाना और भारत निर्माण के माध्यम से नए भारत का निर्माण करना है। ❑

भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार कृषि

माधव पटेल
माध्यमिक शिक्षक,
शासकीय नवीन माध्यमिक
शाला, लिधौरा विकासखंड
बटियागढ़, दमोह (म.प्र.)

हमारा देश गाँवों में बसने वाला देश है हमारी आबादी का 65 प्रतिशत से भी अधिक भाग गाँवों में निवास करता है जबकि देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में गाँवों की हिस्सेदारी केवल 13 प्रतिशत है इसीलिए गाँव को संपूर्ण आत्मनिर्भर बनाए बिना आत्मनिर्भर देश की कल्पना नहीं की जा सकती है। हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मजबूत आधार कृषि है। हमारी कृषि का इतिहास लगभग उतना ही प्राचीन है जितना कि देश। हम आरंभ से ही कृषि उत्पादक देश रहे हैं। रॉयल कमिशन ऑन एग्रीकल्चर 1936 के अनुसार भी देश में कृषि लगभग 11 हजार वर्षों से की जा रही है। आदि कालीन तथा मध्यकालीन भारत में खाद्यान्न फसलों के रूप में चावल, गेहूँ, मोटे अनाज और दलहनों की खेती होती थी। आदिकालीन भारत न केवल खाद्यान्न में आत्म-निर्भर बना बल्कि उसने विभिन्न कृषि उत्पादों का निर्यात भी किया। हमारे किसान सदा से ही कुशल, परिश्रमी, स्वतंत्र और स्वाभिमानी रहे हैं उनकी समृद्धि के कारण ही भारतीय गाँवों में संपन्नता रही। इसका उदाहरण हम अभी देख भी चुके हैं लॉकडाउन में जब देश की पूरी अर्थव्यवस्था बेहाल हो गई, सभी क्षेत्रों की विकासदर जमीन पर आ गई। देश की जीडीपी करीब एक चौथाई रह गई इस संकट के दौर में भी एक सेक्टर ऐसा रहा जो देश के विकास का सहारा बना। देश की पहली तिमाही पर गौर करें तो स्पष्ट होता है कि केवल कृषि क्षेत्र में ही पॉजिटिव ग्रोथ देखने को मिलती है। इसी तिमाही में पिछले वर्ष कृषि की विकास दर 3 प्रतिशत थी जो इस वर्ष 3.4 प्रतिशत हो गई। जो पिछले वर्ष की तिमाही की तुलना में 40 अंक अधिक है। शेष ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जो विकास कर पाया है। उक्त आँकड़ों से जाहिर होता है कि कृषि का विकास एक मजबूत और आत्मनिर्भर राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। देश की बहुतायत में आबादी गाँव मे रहती है जिसमें अधिकतर व्यक्ति किसान हैं। जो कृषि का कार्य करते हैं इसलिए हमें कृषि प्रधान देश कहा जाता है। एक अनुमान के मुताबिक लगभग 70 प्रतिशत भारतीय कृषि कार्य पर निर्भर हैं इतना बड़ा क्षेत्र होने के बावजूद भी इस क्षेत्र में विकास की जो संभावनाएँ हैं उनका दोहन कर पाने में नीतिनिर्माताओं से कुछ कमी रह गई है। अभी देखें तो पाते हैं कि अन्नदाता दोहरी मार झेल रहा है। पहली यह कि मौसम की मार के कारण उसको पूरी उपज मिल ही नहीं पाती, दूसरी यदि फसल अच्छी भी हो जाए तो मंडी में उपज का वह दाम नहीं मिलता जिस दाम की वह अपेक्षा रख कर मेहनत करता है। निरंतर नीचे खिसकता जल स्तर भी किसानों की बदहाली का एक प्रमुख कारण है। मौसम की प्रतिकूलता, प्राकृतिक आपदाएँ, बढ़ती लागत, ऋण का अधिक बोझ आदि परिस्थितियाँ किसानों की कमर तोड़ने का कार्य कर रही हैं। इन सब परिस्थितियों में कई किसानों का मनोबल टूट जाता है और अप्रिय कदम भी उठा लेते हैं जिनकी

खबरें यदा कदा आती रहती हैं। साथ ही लोग खेती छोड़कर अलग-अलग पेशा अपना रहे हैं। इस सबका आशय ये बिल्कुल भी नहीं कि राज्य व केंद्र सरकार किसानों की ऐसी दशा देख कर परेशान नहीं है। केंद्र सरकार ने जहाँ प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि और किसान क्रेडिट कार्ड से किसानों को सहायता पहुँचाने का कार्य किया है तो दूसरी और अनेक राज्य सरकारें कृषि ऋण को माफ करने की दिशा में कदम उठा रही हैं, परंतु ऐसा करना समस्या का दीर्घकालीन समाधान नहीं माना जा सकता। जय जवान, जय किसान का नारा पूरे भारत में लागू करना होगा। किसानों की समस्या का एक ही समाधान ये हो सकता है कि कृषि उपज की सही कीमतें सुनिश्चित करना। जिस प्रकार औद्योगिक उत्पादों के मूल्य उद्योग वाले निर्धारित करते हैं, उसी प्रकार कृषि उत्पादों का मूल्य निर्धारित करने का अधिकार किसानों के पास हो। खेती के लिए उन्हें इतनी सुविधाएँ मिलें कि वे आत्मनिर्भर बन सकें, किसान वैसे भी एक स्वाभिमानी प्रजाति है, वह हर बात के लिए याचना नहीं करती बल्कि सदैव देने को तैयार रहती है। हमारी अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है, लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या इस क्षेत्र में कार्यरत है। कृषि का भारतीय अर्थव्यस्था के सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 14 प्रतिशत योगदान है। लेकिन लगातार हमारी अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान घट रहा है। 1950 के दशक में हमारी अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान 53 प्रतिशत प्रतिशत होता था जो वर्तमान में करीब 13 प्रतिशत रह गया है। देश में निर्यात के क्षेत्र में कृषि का 10 प्रतिशत हिस्सा है। देश की 1.30 अरब आबादी की खाद्य सुरक्षा कृषि पर निर्भर है। कृषि के क्षेत्र में आवश्यक है कि लोग उसमें निवेश करें जिससे किसानों को इसका लाभ मिल सके। यदि किसानों का रुझान इस ओर कम होगा तो भविष्य में इसका प्रभाव न केवल हमारी अर्थव्यवस्था पर पड़ेगा बल्कि हमारी खाद्य-आत्मनिर्भरता और खाद्य-सुरक्षा पर भी पड़ेगा। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि देश को हमेशा सहारा देने वाले क्षेत्र के लिए विशेष विकास की योजनाओं को

केंद्र सरकार ने जहाँ प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि और किसान क्रेडिट कार्ड से किसानों को सहायता पहुँचाने का कार्य किया है तो दूसरी और अनेक राज्य सरकारें कृषि ऋण को माफ करने की दिशा में कदम उठा रही हैं, परंतु ऐसा करना समस्या का दीर्घकालीन समाधान नहीं माना जा सकता। जय जवान, जय किसान का नारा पूरे भारत में लागू करना होगा। किसानों की समस्या का एक ही समाधान ये हो सकता है कि कृषि उपज की सही कीमतें सुनिश्चित करना। जिस प्रकार औद्योगिक उत्पादों के मूल्य उद्योग वाले निर्धारित करते हैं, उसी प्रकार कृषि उत्पादों का मूल्य निर्धारित करने का अधिकार किसानों के पास हो।

जमीनी हकीकत का अमली जामा पहनाया जाए। टर्म्स ऑफ ट्रेड के चलते किसानों की आय में गैर कृषि कार्य करने वाले लोगों की तुलना में अपेक्षाकृत बढ़ोतरी नहीं कर पाई, बल्कि आय में विषमता की खाई दिनों दिन बढ़ती ही चली गई। हम सीधे तौर पर कह सकते हैं कि देश की कुल अर्थव्यवस्था की प्रगति में जो कुछ समृद्धि हुई है उसका वितरण अर्थव्यवस्था एवं समाज के विभिन्न वर्गों में समान रूप से नहीं हुआ, विशेषकर ग्रामीण समुदाय को उसका समुचित भाग नहीं मिला। हरित क्रांति से किसानों को तात्कालिक लाभ तो मिला प्रति मृदा स्वास्थ्य पर ध्यान न देने से ये लंबी अवधि तक चल नहीं सका।

1. शहरों पर निर्भरता कम करना - सबसे पहले तो हमे गाँवों की निर्भरता को शहरों पर कम करना होगा ग्रामीणों को उनके गाँवों में ही संसाधन उपलब्ध कराने होंगे फसलों के क्रय विक्रय की प्रकिया ऐसी करनी होगी कि किसानों को गाँवों में ही सुविधाएँ प्राप्त हों।

2. जैविक खेती को प्रोत्साहन एवं बाजार - जहाँ रासायनिक खेती है वहाँ मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है तो दूसरी ओर मृदा की सेहत निरंतर गिर रही है और फसल का उत्पादन भी कम हुआ है। हमें किसानों को रासायनिक खेती का विकल्प जैविक खेती को बढ़ावा देकर उपलब्ध कराना होगा साथ ही जैविक उत्पादों के लिए बाजार भी उपलब्ध कराना अनिवार्य है।

3. पशुपालन को बढ़ावा - अकेले कृषि पर आश्रित होने के कारण किसान लगातार हानि उठा रहे हैं और कृषि कार्य से विमुख भी हो रहे हैं। हमें कृषकों के लिए अच्छी नस्ल के पशु उपलब्ध कराने होंगे जिससे वो एक अन्य आय के स्रोत की ओर जा सकें। इससे उनका व्यय भी पृथक से नहीं है क्योंकि कृषि अपशिष्टों से पशुपालन आसानी से हो सकता है साथ ये किसानों को अतिरिक्त धनार्जन का

विकल्प भी बनेगा।

4. ग्राम समितियों को प्रोत्साहन – गाँवों में किसानों की सबसे बड़ी समस्या होती है कि कृषि बीज आसानी से उपलब्ध नहीं होता और यदि होता है तो मनमानी दर पर जिससे किसान कर्ज के बोझ में दब जाता है इसलिए गाँव में समिति बनाकर उनकी समस्या का हल किया जा सकता है समिति को कुछ शासकीय अनुदान भी दिया जा सकता है जो सभी किसानों के हित में होगा समिति गाँव के किसानों को बीज आदि का प्रबंध करेगी।

5. तकनीकी सहायता – आज भी हमारे किसान परंपरागत कृषि में संलग्न है जिस कारण उनको वांछित लाभ नहीं मिल पा रहा है साथ ही कृषि जोत कम होने से किसान आर्थिक रूप से पिछड़ रहे हैं इसके लिए आवश्यक है कि किसानों को आधुनिक तकनीक की खेती में सहयोग प्रदान किया जाए जिससे कम खेती में भी अधिक लाभ अर्जित हो सके।

6. भंडारण सुविधा – किसानों को ग्रामीण क्षेत्र में अपनी फसलों के भंडारण की समस्या से दो चार होना पड़ता है। बहुतायत में किसानों के पास भंडारण के लिए जगह ही नहीं होती है। मजबूरी में कम दाम पर अनाज का विक्रय करना पड़ता है और बाद में उसी अनाज को अधिक कीमत पर खरीदना भी पड़ता है इसलिए यदि गाँव के स्तर पर ही भंडारण की सुविधा उपलब्ध करवा दी जाए तो किसानों की आय निश्चित रूप से बढ़ेगी।

7. कुटीर उद्योग – ग्रामीण अर्थव्यवस्था को गति देने के लिए आवश्यक है कि गाँवों में छोटे-छोटे उद्योगों की स्थापना की जाए। ये माइक्रोप्लान के अंतर्गत हो, अर्थात् जहाँ जिस वस्तु की उपलब्धता हो वहाँ उससे संबंधित कुटीर उद्योग स्थापित किया जाए। गाँव में जो लोग जिस विधा में प्रवीण हों उनको उसी में अवसर दिए जाएँ जैसे बांस के बर्तन बनाने में, मिट्टी के बर्तन बनाने में आदि। लोगों को छोटे-छोटे प्रशिक्षण देकर कुटीर उद्योगों के लिए तैयार किया जाए।

8. कृषि आधारित उद्योगों को प्रोत्साहन – ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था को देखते हुए कृषि पर आधारित उद्योगों को बढ़ावा देकर ग्रामीणों को आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। कृषि से जुड़े जैसे पशुआहर उद्योग, पापड़, अचार, बड़ी आदि उद्योग स्थापित किए जा सकते हैं।

9. बिजली में आत्मनिर्भरता – भविष्य में सबसे बड़ी समस्या बनेगी बिजली की आपूर्ति। और कृषि बिना बिजली के संभव है नहीं, इसलिए किसानों को रियायती दर पर सोलर ऊर्जा का विकल्प उपलब्ध करवाकर उनको बिजली की समस्या से बचाया जा सकता है।

10. एक मुश्त सहायता – किसानों को एकमुश्त प्रति एकड़ के मान से 10000 सहयोग राशि दी जाए क्योंकि आँकड़े प्रदर्शित करते हैं कि विभिन्न कृषि योजनाओं, उपकरणों पर दिए जाने अनुदान और लगभग एक वर्ष के अंतर से जो प्राकृतिक आपदाएँ सूखा, बाढ़ आदि आती है उसमें जो मुवावजा दिया जाता है, साथ ही प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि को मिला दिया जाए तो लगभग 5000 (पाँच हजार) रुपये की प्रतिवर्ष सहायता हो जाती है सरकार इन सभी को बंद कर एकमुश्त 10000 (दस हजार) रुपया प्रति एकड़ सहायता सीधे किसान के खाते में हस्तांतरित करें तो किसानों की स्थिति में सुधार निश्चित है। इस प्रकार की सहायता तेलंगना प्रदेश में हो भी रही है।

किसानों के खर्च का एक बहुत बड़ा हिस्सा डीजल पर खर्च होता है, इसके लिए भी सरकार किसानों को प्रति एकड़ 20 लीटर डीजल कर रहित प्रदान करे तो किसानों की उन्नति की संकल्पना को साकार किया जा सकता है।

अनुमान के मुताबिक 2050 तक हमारी आबादी लगभग 170 करोड़ होगी जो दुनिया के देशों में सबसे अधिक होगी। इस बढ़ती आबादी के लिए खाद्यान्न की आपूर्ति करने हेतु देश को उत्पादकता में चौतरफा विकास वाली टिकाऊ नीति अपनानी होगी, क्योंकि खेती योग्य क्षेत्रफल के विस्तार की संभावना लगभग नहीं के बराबर है। इसके अलावा, लगातार खेती किए जाने से मिट्टी के अंदर पोषक तत्व भी कम होते जा रहे हैं। इसलिए मिट्टी के मूल प्रमुख एवं लघु पादप पोषक तत्त्वों की पुन: पूर्ति करने की आवश्यकता है। जिससे हमारे गाँव नए रोजगार का मौका खोज सकें और बढ़ती आबादी को रोजगार दे पाने में सक्षम हो सकें। ❑

भगवद्गीता एवं आधुनिक जीवन में तनाव प्रबंधन

प्रो. सरोज व्यास

फेयरफील्ड प्रबंधन एवं तकनीकी संस्थान, नई दिल्ली

जीवन की गति के समपार्श्विक ही जीवन ऊर्जा की भी गति होती है। एक तरुण जीवन सर्वाधिक ऊर्जावान माना जाता है, ऊर्जा की गतिशीलता में विवेक अल्पांश स्तर पर होता है। आयु के एक पड़ाव पर पहुँच कर जैसे-जैसे गतिशीलता की मात्रा कम होती है वैसे-वैसे विवेकशीलता की मात्रा में परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक स्तर पर व्यक्ति कर्मों का आकलन प्रारम्भ करता है, लेकिन संतुष्टिपरक समाधान नहीं मिलने पर निरंतर विविध प्रकार के तनावों से जूझता रहता है। गीता एक महाकाव्य का अंश होते हुये भी अपने आप मे 18 अध्याय एवं 700 श्लोकों का महाकाव्य है। वर्तमान समय में जिसे हम धर्म समझ कर जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान दे रहे हैं। एक ओर जीवन एक आडंबर में निरंतर रूप से संकुचित होता जा रहा है, वहीं दूसरी ओर श्रीमद भगवद्गीता में धर्म की बहुत ही सरल एवं विहंगम परिभाषा दी गई है। जिसके अनुसार धर्म तो हमारे नियमित जीवन की चर्या मात्र है। जीवन की सारी शंकाओं को दूर करते हुये सरल, शांत एवं आनंदमयी जीवन निर्देशन ग्रंथ का नाम ही गीता है।

प्रस्तुत शोधपत्र में व्यक्ति के तनाव प्रबंधन में भगवद्गीता ज्ञान के योगदान का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि यही एक ग्रंथ है जिसने व्यक्ति विशेष से किसी भी प्रकार की प्रत्याशा किए हुए एक आत्मविश्वास प्रदान किया गया है। व्यक्ति का सरल जीवन नियमित सहज कर्म, व्यवहार एवं आचरण ही आनंदमय जीवन की कुंजी है। गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग सभी की सरल एवं सहज व्याख्या ने मनुष्य को आश्वस्त किया कि जो जहाँ से भी चले जीवन का अंतिम लक्ष्य सभी के लिए समान है। कर्मयोगी को कर्म मुक्त कर ज्ञानी बनाने की क्षमता केवल गीता में ही है। शरीर मन एवं आत्मा का अद्‌भुत विग्रह जीवन चयन को सरल बना कर व्यक्ति को सहज ही तनाव मुक्त करता है।

श्रीमद भगवद्गीता के प्रत्येक श्लोक में ज्ञान का समुन्द्र समाया हुआ है। मात्र कुछ श्लोकों को ही आत्मसात कर मनुष्य न केवल अपना जीवन अपितु अपने साथी, सहचर एवं संबंधियों के साथ को सुखमय बना सकता है। एक साधारण व्यक्ति जीवन के नित्य कर्मों को करते हुए किस प्रकार शांत, सहज एवं आनंदित जीवन यापन कर सकता है। श्रीमद भगवद्गीता एक सम्पूर्ण निर्देशिका है।

कोई भी व्यक्ति चाहे वह ज्ञानी, अज्ञानी, गृहस्थ, संन्यासी, गुणी, अवगुणयुक्त, धार्मिक अथवा अत्याचारी सभी के जीवन के अनुशासन एवं संचालन हेतु ज्ञान से सुसज्जित पवित्र ग्रंथ है।

इंद्रियविषयों का चिंतन करते हुए मनुष्य की उनमें आसक्ति उत्पन्न हो जाती है और ऐसी आसक्ति से काम उत्पन्न होता है और फिर काम से क्रोध प्रकट होता है।

इंद्रियों की शक्ति का मनुष्य को, पर्यावरण का अनुभव करने, जीवंत बनाने, क्रियाशीलता को प्रभावशाली एवं ऊर्जावान बनाने हेतु सृजित किया गया, किन्तु जैसे ही हम किसी अनुभूति को स्थायी बनाने हेतु उसका स्वामित्व प्राप्त करना चाहते हैं, स्वयं को कस्तूरी मृग बना लेते हैं। सर्वस्व साथ होते हुए भी निरंतर घड़ी की सुइयों के साथ जीवन के अंतिम क्षणों तक भागते रहते, भागते रहते एवं सिर्फ भागते रहते हैं। जीवन के प्रत्येक क्षण को सिर्फ जीने की चेष्टा कर, जीवन में तनाव के स्तर को सरलता से न्यूनतम किया जा सकता है।

क्रोध से पूर्ण मोह उत्पन्न होता है और मोह से स्मरणशक्ति का विभ्रम हो जाता है। जब स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है तो बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि नष्ट होने पर मनुष्य भाव-कूप में पुन: गिर जाता है।

किसी भी संवेग की इच्छा करना सरल है किन्तु स्वामित्व हेतु सदैव सामर्थ्य का होना आवश्यक होता। सामर्थ्यविहीन इच्छा सदैव ही क्रोध को उत्पन्न करती है। क्रोध के संवेग मे हमेशा ही वेग होता है।

ऐसी अवस्था में क्षुब्ध प्राणी मोहग्रस्त होता जाता है, क्योंकि चाहता तो वह सब कुछ है पर मिलता कुछ भी नहीं और ऐसी अवस्था में व्यक्ति का दिग्भ्रमित होना निश्चित होता है। अज्ञानतावश वह जीवन का उद्देश्य क्या है, क्यों इस धरती पर आया है? क्यों भाग रहे? इनका उत्तर ढुँढ़ने में असमर्थ होता है।

भगवान के भक्त सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाते हैं क्योंकि वे यज्ञ में अर्पित किए गए भोजन को ही खाते हैं, अन्य लोग जो अपने इंद्रिय सुख के लिए भोजन बनाते हैं निश्चित रूप से पाप को खाते हैं।

शास्त्रों के अनुसार पाप एवं पुण्य को 'मनसा वाचा कर्मणा' का वृहद क्षेत्र प्रदान कर रखा है, अर्थात् मन वाणी एवं कर्म तीनों को ही पाप एवं पुण्य की परिधि में संरक्षित किया गया है। उसी प्रकार भोजन का संबंध न केवल हमारे शरीर से होता है, बल्कि हमारे मन वाणी एवं कर्म तीनों ही भोजन तत्त्व से संचालित होते हैं। भोजन को सात्विक, तामसिक एवं राजसिक वर्गों में विभाजित किया गया है। सात्विक भोजन जहाँ मन को शांत एवं संयमित बनाते हैं। वही तामसिक भोजन मनुष्य को उत्तेजित एवं आक्रामक बनाता है। जबकि राजसिक भोजन सुख विलासिता एवं आमोद प्रमोद के प्रेरक होते हैं।

जब हम भोजन को प्रसाद समझ कर ग्रहण करते हैं तो हम स्वाद से अधिक तृप्ति की अनुभूति करते हैं। वर्तमान समय में भोजन के संबंध में अनेक प्रकार की विविधताएँ एवं भ्रांतिया प्रचलित हैं। जनमानस वर्तमान समय में भोजन में पोषण के स्थान पर स्वाद, समय के स्थान पर सुविधा एवं अध्यात्म के स्थान पर समृद्धि के स्तर पर मापता है, भोजन को यदि हम प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं तो उससे संतुष्टि स्वास्थ्य एवं समृद्धि प्राप्त कर एक संयमित जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

व्यक्ति के तनाव प्रबंधन में भगवद्गीता ज्ञान के योगदान का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि यही एक ग्रंथ है जिसने व्यक्ति विशेष से किसी भी प्रकार की प्रत्याशा किए हुए एक आत्मविश्वास प्रदान किया गया है। व्यक्ति का सरल जीवन नियमित सहज कर्म, व्यवहार एवं आचरण ही आनंदमय जीवन की कुंजी है। गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग सभी की सरल एवं सहज व्याख्या ने मनुष्य को आश्वस्त किया कि जो जहाँ से भी चले जीवन का अंतिम लक्ष्य सभी के लिए समान है।

न तो कर्म से विमुख होकर कोई कर्मफल से छुटकारा पा सकता है और न केवल सन्यास से सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

जीवन में कर्म विहीन होकर कोई भी प्राणी नहीं रह सकता क्योंकि कर्म जीवन का परिचायक है। निर्जीव अवस्था में ही व्यक्ति कर्म गति से विमुख रह सकता है। यदि व्यक्ति कर्मों से स्वयं को पृथक रखने हेतु संन्यास ले लेता है। तो भी एक संन्यासी जीवन के कुछ कर्म उसे निर्वहन करने ही होते हैं। अत: उसके लिए भी प्रभु ने श्रीमद भगवद्गीता में मार्गदर्शन प्रदान किया।

जो व्यक्ति कर्मफलों को समर्पित करके आसक्तिरहित होकर अपना कर्म करता है, वह पापकर्मों से उसी प्रकार अप्रभावित रहता है, जिस प्रकार कमलपत्र जल से अस्पृश्य रहता है।

जीवन जीने का जो सरल मार्ग हम अपनाते हैं, उसके अनुसार जीवन में प्राप्त उपलब्धियों का श्रेय हम स्वयं को देकर फूले नहीं समाते एवं गौरवान्वित होते हैं, वहीं कुछ अप्रिय अथवा असफल होने पर हम भगवान को दोषी मान लेते हैं, किन्तु जीवन जीने एवं तनावरहित रहने का सरल तरीका यही है कि जिन्हें हम गलतियों एवं असफलताओं का श्रेय दे रहे हैं उन्हें ही अपनी सफलताओं का भी श्रेय दें तभी हम अहंकार से बच सकेंगे, मिथ्या एवं झूठ के आडंबर से मुक्त सरल एवं शांत जीवन जी सकेंगे। ❑

समस्त विश्व आज आशा भरी निगाहों से भारत की तरफ देख रहा है और भारत भी कृण्वन्तो विश्वमार्यम एवं वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव लिए समस्त विश्व के मार्गदर्शन में महती भूमिका निभा रहा है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में मैं देख रहा हूँ कि 'भारत माता पुनः विश्व गुरु के सिंहासन पर आरूढ़ हो रही है'। निश्चित ही समर्थ एवं समृद्ध भारत विश्व के शिखर पर पहुँचेगा तथा 'याची देही याची डोला' अर्थात् हम सभी देशवासी इसी शरीर द्वारा इन्हीं नेत्रों से यह सच होता हुआ देख सकेंगे।

नया भारत, समर्थ भारत, समृद्ध भारत

डॉ. सुनील राय पोरवाल

प्राध्यापक, महात्मा गांधी राजकीय विद्यालय, पुलिस लाईन, भीलवाड़ा (राज.)

प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष ऋषियों एवं मुनियों की तपोभूमि रहा है। यहाँ की उर्वरा भूमि में अनेक संत, दार्शनिक, वैज्ञानिक, खगोल वेत्ता पैदा हुए। जिनमें पाणिनी, सुश्रुत, चरक, वराह मिहिर, आर्य भट्ट, भास्कराचार्य प्रमुख है। इन्होंने ज्ञान और प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित की, साथ ही जीवन मूल्यों एवं नैतिक आदर्शों की स्थापना की। इस प्रकार से हमारा देश शुरू से समस्त विश्व का मार्गदर्शक रहा है। कालान्तर में कुछ ब्राह्य आक्रान्ताओं ने भारतवासियों की आपसी फूट का फायदा उठाकर हमारे देश को न केवल राजनैतिक रूप से परतंत्र बनाया बल्कि हमारी संस्कृति को भी छिन्न-भिन्न करने की कोशिश की। इसमें मुगलों ने शक्ति के बल पर तो अंग्रेजों ने हमारी शैक्षिक प्रणाली में परिवर्तन कर हमें पाश्चात्य संस्कृति का पिछलग्गू बनाया, फिर कई बलिदानों से हम आजाद भी हुए।

खैर आज जब भारतवर्ष अपनी स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगांठ को अमृत महोत्सव के रूप में मना रहा है तो एक सिंहावलोकन करना आवश्यक हो जाता है कि आज हम कहाँ खड़े हैं। यदि हम स्वतंत्रता के बाद हुई हमारी प्रगति के बारे में समग्र दृष्टि से विचार करें तो प्रारंभिक वर्षों में हम उस संतोषजनक स्थिति में नहीं पहुँच पाये जितना विश्व के अन्य देशों ने हमारी ही स्थिति के सापेक्ष तेजी से प्रगति की है। परन्तु विगत कुछ वर्षों में भारत ने विभिन्न क्षेत्रों में विकास के रथ की गति तेजी से बढ़ाई है, ऐसा देश में त्वरित व कठोर निर्णय लेने एवं दृढ़ संकल्पित नेतृत्व के कारण संभव हो पाया है।

वर्तमान में भारत के योग, आयुर्वेद, आध्यात्मिक जीवनशैली को दुनिया के कई देशों ने अपनाया है। आज हम न केवल व्यापार, उद्योग, स्वास्थ्य के क्षेत्र में आगे बढ़े हैं बल्कि उत्कृष्ट सैन्य संचालन, सटीक विदेश नीति एवं उन्नत तकनीक से विश्व के अग्रणी देशों में गिने जाने लगे हैं।

कृषि

पिछले कुछ वर्षों में कृषि में प्रौद्योगिकी के उपयोग से क्रान्तिकारी परिवर्तन आ रहे हैं। 2021 में डिजीटल कृषि मिशन द्वारा कृत्रिम बुद्धिमता, GIS तकनीक, ड्रॉन, रोबोट द्वारा कृषि में नई तकनीक शुरू की गई है तथा इंडिया डिजीटल इकोसिस्टम ऑफ एग्रीकल्चर पर कृषि एवं किसान एवं किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा एक परामर्श पत्र (IDEA) जारी किया है, जो कृषि क्षेत्र में डिजीटल क्रान्ति को बढ़ा रहा है। उन्नत कृषि उपकरण एवं नवीनतम तकनीकी द्वारा की जा रही खेती से किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार आया है। विभिन्न डिग्रीधारी युवा भी अपने अच्छे पैकेज का जॉब छोड़कर इस क्षेत्र में उन्मुख हुए हैं। जनवरी 2021 में प्रकाशित आर्थिक समीक्षा के अनुसार भारतीय कृषि क्षेत्र ने कोविड-19 महामारी के बावजूद 34 प्रतिशत की वृद्धि दर हासिल की है।

व्यापार

प्राचीनकाल से हमारा देश व्यापार के क्षेत्र में समृद्ध था। भारत से मसालों, धातुओं एवं वस्त्रों के विश्व के अन्य देशों

में निर्यात हुआ करता था। वर्तमान में भारतीय व्यापार उद्योग कड़ी प्रतिस्पर्धा के बावजूद विश्व के अन्य देशों से अग्रसर है। 2021-22 में भारत के विदेशी व्यापार में न केवल मजबूती में सुधार हुआ है बल्कि भारत चालू वित्तीय वर्ष में निर्धारित 400 बिलियन अमेरिकी डॉलर के महत्त्वाकांक्षी वस्तु निर्यात लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु कटिबद्ध है। भारत के कृषि एवं संबद्ध उत्पादों के निर्यात में 23.2 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है, वहीं सेवा निर्यात में 18.4 प्रतिशत वृद्धि के साथ कुल व्यापार 177.7 बिलियन अमेरिकी डॉलर हो गया।

2021 के अन्त में देश में मजबूत पूंजी प्रवाह से भारत विदेशी मुद्रा भण्डार के मामले में विश्व में चौथे स्थान पर है, साथ ही भारत की विदेश नीति के तहत उदारवादी अर्थव्यवस्था के कारण विश्व के कई देश आज भारत के साथ व्यापार के नित नए अनुबंध कर रहे हैं। कई देशों ने इस क्षेत्र में भारत के नेतृत्व को स्वाभाविक रूप से स्वीकार कर लिया है। पिछले कुछ दिनों में भारत को जी-20 की अध्यक्षता मिलना इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

उत्कृष्ट सैन्य संचालन

आज समृद्ध भारतीय सेना अत्याधुनिक सैन्य उपकरणों एवं स्वतंत्र निर्णयों के कारण और भी सशक्त हुई है। पुलवामा हमले के बाद हुई सर्जीकल स्ट्राइक तथा हमारे जांबाज वायु सैनिक अभिनन्दन वर्धमान को दुश्मन देश के हलक से खींच कर वापस लाना तथा चीन का गलवान घाटी से पीछे हटने को मजबूर होना भारत के कुशल राजनैतिक नेतृत्व एवं सक्षम सैन्य क्षमता का अद्भुत उदाहरण है। साथ ही पिछले कुछ वर्षों में सीमा पार से आए दिन होने वाली आतंकी घटनाओं में भी भारी कमी आई है। हमारे बहादुर सैनिकों ने आतंक की कमर तोड़ कर रख दी है।

आज भारत के पास विशाल युद्धक टैंक एवं नभ का सीना चीरने वाले राफेल, तेजस जैसे युद्धक विमान एवं ब्रह्मोस, अग्नि 5 मिसाईले किसी भी समय दुश्मन को नेश्तनाबूत करने में सक्षम हैं।

ऊर्जा

हमारे देश में पारम्परिक और गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों का अतुलनीय भण्डार है, एक ओर जहाँ कोयला, लिग्नाईट, प्राकृतिक गैस, तेल, जल, विद्युत एवं परमाणु ऊर्जा जैसे पारम्परिक स्रोतों के मर्यादित एवं नीति पूर्ण दोहन से भारत ने ऊर्जा के क्षेत्र में प्रगति की, वहीं दूसरी ओर पवन, सौर एवं घरेलू अपशिष्ट जैसे गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों से ऊर्जा प्राप्ति को बढ़ावा देकर नया विकल्प दिया है। सरकार ने 2030 तक सभी प्रकार के वाहनों को इलेक्ट्रिसिटी से चलाने की नीति पारित की। वर्तमान में भारत ने नवीनीकरण ऊर्जा क्षेत्र में वृद्धि करते हुए 136 गीगावाट की क्षमता विकसित की है, जो 2030 तक 450 गीगावाट 136 तक वृद्धि का लक्ष्य है। साथ ही भारत में नवीनीकरण ऊर्जा का उपयोग 17 फीसदी से बढ़कर 24 फीसदी तक हो गया है, वहीं कोयले से बनने वाला ईंधन 77 फीसदी से घटकर 66 फीसदी तक आ गया है, इसी वर्ष केन्द्र सरकार द्वारा राष्ट्रीय हाइड्रोजन ऊर्जा मिशन की भी घोषणा की है, तथा आई.आई.टी. दिल्ली द्वारा इको फ्रेन्डली इलेक्ट्रिक स्कूटर 'होप' लाँच किया गया है।

स्वास्थ्य

भारत अत्याधुनिक स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करने के लिए दुनिया के प्रभावी स्वास्थ्य देखभाल वाले देशों में अग्रणी है, एक अनुमान के अनुसार गत तीन वर्षों में भारत में 10 लाख विदेशी नागरिकों ने मेडिकल सुविधा का लाभ लेने हेतु वीजा प्राप्त किया। भारत में 4000 से अधिक हेल्थटेक स्टार्टअप्स काम कर रहे हैं। देश में 2025 तक स्वास्थ्य सेवा क्षेत्र का आकार 50 बिलियन डॉलर तक पहुँचने की संभावना है। जहाँ पूरे देश में डिजिटल प्लेटफॉर्म कोविन के माध्यम से 220 करोड़ से अधिक टीकाकरण की उपलब्धि हासिल की, वहीं महामारी के दौरान विश्व स्तर पर टीकों के तेजी से विकास और वितरण में प्रभावी भूमिका निभाई है। इस प्रकार से पूरे विश्व ने कोविड-19 के दौरान भारत के नेतृत्व को स्वीकार किया है।

अन्तरिक्ष

पिछले कुछ वर्षों में भारत ने अंतरिक्ष के क्षेत्र में जबरदस्त सफलता अर्जित की है। 27 सितम्बर 2016 को भारत ने एक रॉकेट (PSLVC35) से आठ उपग्रहों को अलग-अलग कक्षाओं में स्थापित करके कीर्तिमान स्थापित किया। एक समय में जब हम उपग्रह प्रक्षेपण में विदेशी धरती का उपयोग करते थे, 15 फरवरी 2017 को इसरो ने 104 उपग्रह एक साथ प्रक्षेपित करके नया इतिहास रचा है।

जिसमें 3 भारत के तथा 101 विदेशी उपग्रह हैं। रिमोट सेसिंग सेटेलाइट के क्षेत्र में आज भारत का अग्रणी स्थान है। अन्तरिक्ष के क्षेत्र में मंगलयान (2014), चन्द्रयान (2008), नेविगेशन सेटेलाईट सिस्टम (2016) आदि उपलब्धियाँ भी मील का पत्थर साबित होगी।

साथ ही भारत ने विगत वर्षो से लम्बित चल रहे राम मंदिर विवाद, धारा 370, तीन तलाक आदि समस्याओं का सौहार्दपूर्ण समाधान कर शांति की मिसाल कायम की है।

उपर्युक्त सभी क्षेत्रों में अग्रणी भूमिका होने से समस्त विश्व आज आशा भरी निगाहों से भारत की तरफ देख रहा है और भारत भी कृण्वन्तो विश्वमार्यम एवं वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव लिए समस्त विश्व के मार्गदर्शन में महती भूमिका निभा रहा है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में मैं देख रहा हूँ कि 'भारत माता पुनः विश्व गुरु के सिंहासन पर आरूढ़ हो रही है'। निश्चित ही समर्थ एवं समृद्ध भारत विश्व के शिखर पर पहुँचेगा तथा 'याची देही याची डोला' अर्थात् हम सभी देशवासी इसी शरीर द्वारा इन्हीं नेत्रों से यह सच होता हुआ देख सकेंगे। ❑

स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव और भारत पुनर्निर्माण

डॉ. प्रीति सोनी

सहायक प्राध्यापक
कवयित्री बहिणाबाई
चौधरी उ.म.वि.,
जलगांव (महा.)

हमारे देश की स्वतंत्रता की 75 वीं वर्षगांठ मनाई जा रही है। वह स्वतंत्रता जिसे प्राप्त करने के लिए भारतवर्ष ने एक लंबी लड़ाई लड़ी है। स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई में अनेक लोगों ने अपने प्राणों का बलिदान दिया है। बहुत से लोगों की शहादत गुमनामी में खो गई परंतु वे अपने स्वाभिमान और स्वतंत्रता के लिए लड़ते रहे। आज हर एक नागरिक का यह परम कर्तव्य है कि वह इस स्वतंत्रता संग्राम के असंख्य संघर्ष, असंख्य बलिदानों और असंख्य तपस्याओं से अपनी युवा पीढ़ी को परिचित करवाएँ जिससे हमें एक 'राष्ट्रीय चरित्र' का निर्माण करने की प्रेरणा मिलेगी। हमेशा कोई ना कोई प्रेरक चरित्र, घटना युवाओं को प्रेरणा देती रही है।

इतिहास साक्षी है कि किसी राष्ट्र का गौरव तभी जाग्रत रहता है जब वो अपने स्वाभिमान और बलिदान की परम्पराओं को अगली पीढ़ी को भी सिखाता है, संस्कारित करता है, उन्हें इसके लिए निरंतर प्रेरित करता है। किसी राष्ट्र का भविष्य तभी उज्ज्वल होता है जब वो अपने अतीत के अनुभवों और विरासत के गर्व से पल-पल जुड़ा रहता है। फिर भारत के पास तो गर्व करने के लिए अथाह भंडार है, समृद्ध इतिहास है, चेतनामय सांस्कृतिक विरासत है। इसलिए स्वतंत्रता के 75 साल का ये अवसर एक अमृत की तरह वर्तमान पीढ़ी को प्राप्त हुआ है। स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक पहचान को प्रगति की ओर ले जाने वाली सभी चीजों का एक मूर्त रूप है। स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव यानी- स्वतंत्रता की ऊर्जा का अमृत, स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव यानी - स्वाधीनता सेनानियों से प्रेरणाओं का अमृत। स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव यानी - नए विचारों का अमृत। नए संकल्पों का अमृत। स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव यानी - आत्मनिर्भरता का अमृत। और इसीलिए, यह महोत्सव राष्ट्र के जागरण का महोत्सव है। यह महोत्सव, वैश्विक शांति का, विकास का महोत्सव है।

आज हम स्वतंत्र भारत में जी रहे हैं। इस समय उचित होगा कि हम स्वआकलन करें कि इतने वर्षों में हमारी दशा में क्या परिवर्तन आया है स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से भारत ने अनेक क्षेत्रों में प्रगति की है और अपनी उपलब्धियों को प्राप्त किया है।

जनमानस की रोटी, कपड़ा और मकान यह मूलभूत आवश्यकताएँ थी जिसे हरित क्रांति के द्वारा पूरा किया गया। जब भारतीय कृषि आधुनिक तरीकों और प्रौद्योगिकियों को अपनाने के कारण एक औद्योगिक प्रणाली में परिवर्तित हो गई थी। हरित क्रांति ने भारत की स्थिति को खाद्यान्न की कमी वाले देश से दुनिया के अग्रणी कृषि राष्ट्रों में से एक में बदल दिया। वहीं पीने के पानी की समस्या दूर करने और

सिंचाई के साधनों के रूप में जल की पूर्ति करने के लिए, ऊर्जा उत्पादन के लिए अनेक बांधों का निर्माण किया गया।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अंतरिक्ष में भारत की सबसे बड़ी कामयाबी, ISRO द्वारा एक साथ 104 सैटेलाइट का प्रक्षेपण कर रचा गया इतिहास है। भारत एक रॉकेट से 104 उपग्रहों को अंतरिक्ष में भेजकर इस तरह का इतिहास रचने वाला पहला देश बन गया है।

न्यूक्लियर हथियारों वाले देशों की लिस्ट में भारत का नाम पाँचवें क्रमांक पर है। परमाणु परीक्षण भारत को ऊर्जा के क्षेत्र में आत्म निर्भर बनाने के लिए किया गया था।

केंद्र सरकार और राज्य सरकारों ने मिलकर देश के नागरिकों के लिए बहुत सी योजनाएँ शुरू की हैं। जिनमें कुछ योजना किसानों के लिए और कुछ योजना देश के युवाओं के लिए हैं इसके साथ ही बहुत सी योजनाएँ महिलाओं के लिए भी हैं। इन योजनाओं के पीछे सरकार का उद्देश्य है कि महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाकर महिला सशक्तीकरण को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। वहीं मुस्लिम महिलाओं की

आज पूरे विश्व का भारत की और देखने का नजरिया बदल चुका है। विश्व का यह बदलाव, सोच में यह परिवर्तन 75 साल की हमारी यात्रा का परिणाम है। विश्व, भारत की तरफ गर्व और अपेक्षा से देख रहा है। भारत आज अंतरराष्ट्रीय बाजार में भी अपनी महत्ता साबित कर चुका है और अनेक देशों को मदद भी कर रहा है। आज विश्व पर्यावरण की समस्या से जूझ रहा है और ग्लोबल वार्मिंग की समस्याओं के समाधान का रास्ता हमारे पास है। इसके लिए हमारे पास वह विरासत है, जो हमारे पूर्वजों ने हमें दी है।

सुरक्षा के लिए तीन तलाक से संबंधित अधिनियम पास किया गया। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में केंद्र सरकार ने 1 अगस्त 2019 को यह कानून बनाया। इस विधेयक के अंतर्गत तीन तलाक के मामले को दंडनीय अपराध माना जाएगा।

महिलाओं की शिक्षा एवं आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने के साथ-साथ गाँव का विकास भी एक महत्त्वपूर्ण बिंदु है जो हमें स्वतंत्र भारत में दिखाई देता है।

कृषि तथा लघु उद्योगों को उन्नत करके गाँवों का विकास करने का प्रयास शुरू है।

साल 2002 में 'कर लो दुनिया मुट्ठी में' स्लोगन के साथ रिलायंस ने बाजार में प्रवेश किया तब उसे इंडियन टेलिकॉम इंडस्ट्री में एक क्रांति की तरह देखा गया जो आज के इस प्रगतिशील भारत में सच साबित हुआ है। जनधन अकाउंट के कारण आज प्रत्येक सामान्य व्यक्ति का बैंक अकाउंट है। तथा कैशलेस पेमेंट के द्वारा आज वाकई में सारी दुनिया एक मुट्ठी में आ गई है।

प्रतिरक्षा की अगर हम बात करते हैं तो इस क्षेत्र में भी हमने स्वावलंबी होने का बेहतरीन प्रयास किया है। पुलवामा में शहीद हुए सैनिकों का मुंहतोड़ जवाब 'सर्जिकल स्ट्राइक' द्वारा दिया गया जिससे हमारे सैन्यदल का दबदबा व आत्मविश्वास और अधिक बढ़ गया। स्वास्थ्य सेवाओं की अगर हम बात करते हैं तो कोविड-19 की परिस्थिति में कोविड वैक्सीन को शीघ्रता से निर्मित कर भारत ने अपनी प्रगतिशीलता का परिचय दिया है और भारत के नागरिकों के साथ-साथ अनेक निर्धन देशों को मुफ्त में वैक्सीन देकर अपनी उदारता का परिचय भी भारत ने दिया है। यहाँ हम आत्मनिर्भर भारत का निर्माण कर रहे हैं जो भविष्य में इसी तरह की महामारियों और आपदाओं की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होगा।

भारत पुनर्निर्माण और विकास (EBRD) के लिए यूरोपीय बैंक का 69 वाँ शेयरधारक बन गया है। यह कदम भारतीय कंपनियों को उन क्षेत्रों में संयुक्त निवेश करने में सक्षम करेगा जिनमें EBRD संचालित है। इसका उद्देश्य उभरते यूरोप में निजी और

उद्यमशील पहल को बढ़ावा देना है और 38 उभरती अर्थव्यवस्थाओं में निवेश करना है।

विभिन्न संस्कृति और परंपरा के लोगों के बीच की घनिष्ठता ने एक अनोखा देश 'भारत वर्ष' बनाया है। भारत के लोग आधुनिक हैं और समय के साथ बदलती आधुनिकता का अनुसरण करते हैं फिर भी वो अपने सांस्कृतिक मूल्यों और परंपराओं से जुड़े हुए हैं। यही संस्कृति और परंपरा राष्ट्रीय गौरव की परिचायक हैं। इस संस्कृति का जतन करते हुए एकता, अनुसंधान, आत्मनिर्भरता, नई शिक्षा प्रणाली जैसे कई महत्त्वपूर्ण प्रयासों की बात करें जिस पर चलकर देश 'विकसित भारत' के लक्ष्य को पूर्णतः हासिल कर सकता है।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति हमारे सामने आ गई है। जो कि बहुत अधिक मंथन के साथ बनी है। इस शीक्षा नीति में कौशल्य पर बल दिया गया है यह ऐसा सामर्थ्य है जो हमें आत्मनिर्भर बनाने के साथ गुलामी से मुक्ति की ताकत देगा।

आज हम इतने विकसित हो चुके हैं कि देश ने पेट्रोल में 10 प्रतिशत एथनॉल मिलाने का लक्ष्य समय से पहले हासिल कर लिया है। यह ऊर्जा के क्षेत्र में स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता का एक बड़ा कदम है। आज ऊर्जा के क्षेत्र में हमें आत्मनिर्भर होने की बहुत अधिक आवश्यकता है। आज हमें ऊर्जा स्वतंत्रता के लिये सौर ऊर्जा से लेकर हाइड्रोजन मिशन और इलेक्ट्रिक वाहनों जैसे कदमों को अगले स्तर पर ले जाने की जरूरत है।

आज पूरे विश्व का भारत की ओर देखने का नजरिया बदल चुका है। विश्व का यह बदलाव, सोच में यह परिवर्तन 75 साल की हमारी यात्रा का परिणाम है। विश्व, भारत की तरफ गर्व और अपेक्षा से देख रहा है। भारत आज अंतरराष्ट्रीय बाजार में भी अपनी महत्ता साबित कर चुका है और अनेक देशों को मद्द भी कर रहा है। आज विश्व पर्यावरण की समस्या से जूझ रहा है और ग्लोबल वार्मिंग की समस्याओं के समाधान का रास्ता हमारे पास है। इसके लिए हमारे पास वह विरासत है, जो हमारे पूर्वजों ने हमें दी है।

छोटे किसानों, छोटे कामगारों और कारोबारियों का सामर्थ्यवान होना सक्षम भारत की गारंटी है। सूक्ष्म, लघु एवं मझोले उद्यमों, रेहड़ी-पटरी वालों और असंगठित क्षेत्रों में काम करने वालों को मजबूत बनाने की आवश्यकता है इससे औद्योगिक वृद्धि को गति मिलेगी।

इस प्रकार हम देख रहे हैं आज स्वतंत्रता के इन पचहत्तर वर्षों में एक नए भारत का पुनर्निर्माण हो रहा है। प्रगति की अनेक ईंटे जुड़ रही है। नई-नई उपलब्धियाँ स्वतंत्र भारत प्राप्त कर रहा है और अपना परचम लहरा रहा है। बहुभाषा, बहुधर्म, अनेक जातियाँ, भिन्न संस्कृतियाँ सभी को यहाँ प्रगति के समान अवसर प्राप्त हो रहे हैं। ❑

भारतीय संस्कृति और साहित्य में कला तत्त्व

डॉ. पुरुषोत्तम पाटील

सहायक प्रध्यापक- हिंदी विभाग, कवयित्रि बहिणाबाई चौधरी उत्तर महाराष्ट्र वि.वि., जलगांव (महा.)

कला, संगीत, भाषा और साहित्य किसी भी संस्कृति के प्राण तत्व होते हैं और इन प्राण तत्वों के अस्तित्व पर ही किसी भी राष्ट्र और उसके समाज का अस्तित्व निर्भर करता है।

हजारों लाखों वर्षों से भारतीय संस्कृति और भारतीय जनजीवन में रची बसी यह कलाएँ भारत की सनातन जीवन परंपरा को भली भाँति परिभाषित करती हैं।

अभिजात भारतीय संगीत का दायरा विस्तृत होने के साथ ही इतना समृद्ध है कि वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है अत: उसे समस्त कलाओं में श्रेष्ठ माना गया है।

भारत में गीत-संगीत, नृत्य, नाटक-कला, लोक परंपराओं, कला-प्रदर्शन, धार्मिक-संस्कारों एवं अनुष्ठानों, चित्रकारी एवं लेखन के क्षेत्रों में एक बहुत बड़ी सम्पदा मौजूद है जो मानवता की 'अमूर्त सांस्कृतिक विरासत' के रूप में पहचानी जाती है।

कला, संगीत, भाषा और साहित्य किसी भी संस्कृति के प्राण तत्त्व होते हैं और इन प्राण तत्त्वों के अस्तित्व पर ही किसी भी राष्ट्र और उसके समाज का अस्तित्व निर्भर करता है। यह चार मुख्य तत्त्व ऐसे हैं कि जो परस्पर अंतर्संबंधित हैं और इनका अंतर्संबंध पृथक न होकर अन्योन्याश्रित है। इसीलिए भर्तृहरि ने तो यहाँ तक कह डाला 'साहित्य, संगीत, कला विहीन: साक्षात् पशु: पुच्छविषाणहीन:।' अर्थात् साहित्य, संगीत और कला से विहीन व्यक्ति पशु के समान है। भारत यहाँ की संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है जो विश्व की सबसे पुरातन संस्कृतियों में से एक है।

''हमारा देश बाहर से आने वाले विचारों के प्रति कभी भी असंवेदनशील नहीं रहा है; परन्तु उन सब विचारों को हमारे देश ने सदा अपना विशेष रंग और छटा प्रदान की है।'' यही हमारी संस्कृति का मूल है। आज विश्व में भारत के अलावा ऐसी कोई संस्कृति नहीं बची जिसने मनुष्य के जीवन के समस्त पडावों को देखा है, भारतीय संस्कृति ने मनुष्य की उत्पत्ति से लेकर मनुष्य के विकास तक के चरणों को अपनी दृष्टि से देखा है कि, किस प्रकार से मनुष्य की उत्पत्ति इस धरातल पर हुई और किस प्रकार से विभिन्न अवस्थाओं को पार करता हुआ आज का आधुनिक मनुष्य आज के विकसित मकाम तक आकर पहुँचा है। इस बात का लेखा-जोखा यदि विश्व की कोई संस्कृति दे सकती है तो वह भारतीय संस्कृति ही है, क्योंकि संस्कृतियाँ अमर होती हैं और उनकी अमरता वहाँ के समाज और समाज-जन के रक्त में, गुणसूत्रों में अपना अस्तित्व बनाए रखती है, अत: वह अक्सर किसी न किसी रूप में वहाँ के लोगों के वर्तन में परिलक्षित होती रहती है। भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है, उसकी कला, उसका संगीत उसकी भाषा और उसका साहित्य,

इन चारों ने ही भारतीय समाज को समृद्धता प्रदान की है और यह समृद्धि प्रतीक है, राष्ट्र के कालजयी मूल्यों की, जिन्हें हजारों-लाखों वर्षों से इस भारत भूमि पर रहने वाला समाज, इस भारत भूमि पर रहने वाला प्रत्येक जन, मनसा-वाचा-कर्मणा निभा रहा है, आचरित कर रहा है, यह भी उतना ही उल्लेखनीय है।

समृद्ध भारतीय कलाएँ

प्राचीन समय से ही भारतीय शिक्षा की व्यापकता विषयों की दृष्टि से अनंत रही है। उसमें भी भारतीय कलाओं की शिक्षा का अपना एक वैश्विक महत्त्व भी रहा है। वेद, पुराण, ब्राह्मण, अरण्यक आदि अतिप्राचीन ग्रंथ, रामायण, महाभारत, पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थ और आगे अनेकानेक ग्रंथों में कला के विभिन्न रूप एवं सामग्री भरी पड़ी है।

इसका प्रथम सार्थक वर्णन शुक्राचार्य के 'नीतिसार' नामक ग्रन्थ के चौथे अध्याय के तीसरे प्रकरण में मिलता है। उनके कथनानुसार 'कलाएँ अनन्त हैं, उन सबके नाम भी नहीं गिनाये जा सकते; परंतु उनमें 64 कलाएँ मुख्य हैं।'

कला का लक्षण बताते हुए आचार्य लिखते हैं कि 'जिसको एक मूक (गूँगा) व्यक्ति भी, जो वर्णोच्चारण भी नहीं कर सकता, कर सके, वह 'कला' है।' श्री बसवराजेन्द्र विरचित 'शिवतत्त्व रत्नाकर' में मुख्य 64 कलाओं का विवरण मिलता है जो निम्नानुसार है-

1. इतिहास, 2. आगम, 3. काव्य, 4. अलंकार, 5. नाटक, 6. गायकत्व, 7. कवित्व, 8. कामशास्त्र, 9. दुरोदर (द्यूत), 10. देशभाषा लिपि ज्ञान, 11. लिपिकर्प,12. वाचन, 13. गणक, 14. व्यवहार, 15. स्वरशास्त्र, 16. शाकुन, 17. सामुद्रिक, 18. रत्नशास्त्र, 19. गज-अश्व-रथकौशल, 20. मल्लशास्त्र, 21. सूपकर्म (रसोई पकाना), 22. भूरूहदोहद (बागवानी), 23. गन्धवाद, 24. धातुवाद, 25. रससम्बन्धी खनिवाद, 26. बिलवाद, 27. अग्निसंस्तम्भ, 28. जलसंस्तम्भ, 29. वाच:स्तम्भन, 30. वय: स्तम्भन, 31. वशीकरण, 32. आकर्षण, 33. मोहन, 34. विद्वेषण, 35. उच्चाटन, 36. मारण, 37. कालवंचन, 38.स्वर्णकार, 39. परकायप्रवेश, 40. पादुका सिद्धि, 41. वाकसिद्धि, 42. गुटिकासिद्धि, 43. ऐन्द्रजालिक, 44. अंजन, 45. परदृष्टिवंचन, 46.स्वरवंचन, 47. मणि-मन्त्र औषधादिकी सिद्धि, 48. चोरकर्म, 49. चित्रक्रिया, 50. लोहक्रिया, 51. अश्मक्रिया, 52. मृत्क्रिया, 53.दारूक्रिया, 54.वेणुक्रिया, 55. चर्मक्रिया, 56. अम्बरक्रिया, 57. अदृश्यकरण, 58. दन्तिकरण, 59.मृगयाविधि, 60.वाणिज्य, 61. पाशुपाल्य, 62. कृषि, 63. आसवकर्म, 64. लावकुक्कुट मेषादियुद्धकारक कौशल।

''भारतीय संस्कृति का इतिहास जाति के जीवन में होने वाले विभिन्न संघर्षों एवं अन्तर्द्वन्द्वों के प्रस्फुटन का, जीवन स्त्रोत की सहस्त्रमुखी धाराओं के विकास का इतिहास मात्र है। अनादि काल से भारतीय संस्कृति की अपनी ही विशेष ध्वनि रही है वह है मृत्युञ्जयता, विश्व की किसी भी संस्कृति ने इतने उत्थान-पतन, इतने ज्वर भाटे नहीं अनुभव किए जितने अपनी संस्कृति ने, निरन्तर अक्रमण के कारण उसका अंग-प्रत्यंग रुधिराक्त हो गया, परन्तु फिर भी उसने विदेशी शक्तियों के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया। वे इस सनातन संस्कृति पर अपना अधिपत्य स्थापित न कर सके।''

यह समस्त भारतीय कलाएँ मानवीय जीवन के ही नहीं अपितु इस ब्रह्मांड पर उपस्थित जीवन के समस्त आयामों को अपने आप में समाविष्ट करती हैं। यह कलाएँ समग्र मानवीय जीवन और उसके अस्तित्व से संबंधित समस्त क्रियाकलापों का एक समुच्चय है, एक ऐसा समुच्चय जो अपने आप में पूर्ण है; संपूर्ण है। जैसा कि हम जानते हैं कि कलाओं का जीवन में और जीवन के विकास में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण एवं असाधारण योगदान होता है और यह समस्त कलाएँ संस्कृति की वाहक भी होती हैं। हजारों लाखों वर्षों से भारतीय संस्कृति और भारतीय जनजीवन में रची बसी यह कलाएँ भारत की सनातन जीवन परंपरा को भली भाँति परिभाषित करती हैं। विविधताओं से भरे भारतवर्ष में

कलाएँ भारत की बहु आयामी सांस्कृतिक विरासत की संपन्नता का गहन परिचय हमें देती हैं।

अभिजात भारतीय संगीत

यद्यपि संगीत भी कला का ही एक प्रकार है किंतु अभिजात भारतीय संगीत का दायरा विस्तृत होने के साथ ही इतना समृद्ध है कि वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है अत: उसे समस्त कलाओं में श्रेष्ठ माना गया है।

भारतवर्ष में संगीत के सुर हमें अतिपुरातन काल में वैदिक ऋचाओं में सुनाई देते हैं। चार वेदों- ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद में हर वेद का अपना विशेष महत्त्व है। इनमें सामवेद, वेदों का 'संगीत प्रधान' भाग है। प्राचीन भारत वर्ष में आर्यों द्वारा सामवेद के पदों का स्वर सहित गायन किया जाता था जिसे 'साम गान' कहते हैं। ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग का संगम है सामवेद। हमारे प्राचीन ऋषियों ने विशेष मंत्रों का संकलन करके उनके स्वर-ताल बद्ध गायन की तकनीक विकसित की।

आधुनिक विज्ञान और विद्वान भी यह मानने लगे हैं कि सभी स्वर, ताल, छंद, गति, मंत्र, स्वर चिकित्सा, राग नृत्य मुद्रा, भाव भंगिमा आदि का आरंभ सामवेद से ही हुआ है। साम गान के संदर्भ में वैदिक काल में कई वाद्य यंत्रों का उल्लेख मिलता है जिनमें-

तंतु वाद्य (Strings) में वीणा, कन्नड़ वीणा तथा कर्करी आदि हैं। घन वाद्य में दुंदुभी और आडंबर। साथ ही तुरभ, नादी, बंकुरा आदि वाद्य सम्मिलित हैं। इसी के चलते यह सिद्ध हो रहा है कि ''वेदों में संगीत में प्रयुक्त मुख्य तीन स्वर, सम-विषम तालें, मंत्रोच्चारण, मुद्राएँ, वीणा-दुन्दुभि इत्यादि वाद्य, वाद्य को स्वर में मिलाना, सामगान शैलियाँ, नृत्य प्रदर्शन अवसर एवं वातावरण इत्यादि अनेक विषय पक्ष है जो वेदों में संगीत की वैज्ञानिकता को दर्शाते हैं।'' यह बात भारतीय संगीत की समृद्धता को रेखांकित करती है।

सामवेद की गायन पद्धति का वर्णन नारदीय शिक्षा ग्रंथ में मिलता है। इसी वर्णन को आज 'हिंदुस्थानी संगीत' और 'कर्नाटक संगीत' में 'स्वरों के क्रम' - सा, रे, गा, मा, पा, धा, नि के रूप में जाना जाता है।

संपन्न भारतीय भाषाएँ

हमारे देश के प्राचीनतम काल में श्राय की अपनी ठेठ बोली रही होगी और उसी के माध्यम से वे विचारों का आदान प्रदान करते रहे होंगे, पर कालान्तर में जब उसे साहित्यिक रूप मिला होगा तब वह ऋग्वेद की भाषा बनी होगी। ऋग्वेद की भाषा का स्तर सर्वत्र एक-सा नहीं है। भाषा की दृष्टि से उसके अनेक अंशों की रचना भिन्न-भिन्न कालों में हुई जान पड़ती है। इससे उस काल की भाषा की परिवर्तनशीलता का आभास मिलता है। ब्राह्मण और सूत्र ग्रंथों की भाषा ऋग्वेद की भाषा का परिवर्तित रूप है जिसे 300 ई. पू. पाणिनि नामक प्रसिद्ध वैयाकरण ने व्याकरण के नियमों में ऐसा बांध दिया कि उसके रूप में परिवर्तन होना ही असंभव हो गया इस प्रकार आर्यों की साहित्यिक भाषा अभिनव रूप में संस्कृत के नाम से प्रसिद्ध हुई, पर उनकी बोलचाल की भाषा में बराबर परिवर्तन होता रहा पर्याप्त समय बीतने पर जब संस्कृत केवल शिष्ट समाज की भाषा बन गयी और उसका संपर्क जन-साधारण से छूट गया तब जन साधारण की बोलियों को एक बार फिर आगे बढ़ने का अवसर मिला।

भारतवर्ष बहुभाषी देश है। गुजराती, मराठी, कन्नड़, मलयालम, तमिल, तेलुगु, उड़िया, बंगला, असमी, कश्मीरी, पंजाबी, मिन्धी, हिंदी तथा उर्दू भारतवर्ष की प्रधान आधुनिक भाषाएँ हैं। ऐतिहासिक रूप में ये सभी भाषाएँ प्रधानत: संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश भाषाओं से जुड़ी हुई हैं। भारतवर्ष के स्वतंत्र हो जाने के बाद ही भारतवर्ष की आधुनिक भाषाओं का सम्मान बढ़ा है और उनके विकास की ओर ध्यान दिया गया है। आज प्राय: सभी आधुनिक भाषाएँ अपने-अपने प्रदेशों में विकसित हो रही हैं। उन्हें शिक्षा का माध्यम बनाया गया है। माध्यम के रूप में विश्वविद्यालय स्तर तो अभी सब भाषाओं

को प्राप्त नहीं हुआ है, किन्तु विद्यालय तथा महाविद्यालय स्तर तक तो उन्हें माध्यम बनाया गया है। सभी अपनी-अपनी भाषा में शिक्षा प्राप्त कर सकें, ऐसी सुविधा पहले की अपेक्षा अधिक उपलब्ध है। परिणाम यह हुआ है कि ये सब भाषाएँ पहले की अपेक्षा अधिक व्यवहार में हैं और इनका तुलनात्मक अध्ययन करना सुलभ हो गया है।

हिंदी में आरम्भ में केवल बंगला या मराठी भाषा की साहित्यिक रचनाओं के अनुवाद होते रहे हैं, किन्तु आज तो भारतवर्ष की कोई भी ऐसी भाषा नहीं है जिनके अनुवाद हिंदी में न होते हों। अनुवादों के माध्यम से एक भाषा के साहित्य का परिचय दूसरी भाषा जानने वालों को होने लगा है।

विश्व कल्याणक भारतीय साहित्य

भारतीय साहित्य की पहचान की अपेक्षा क्यों है, सबसे पहले इसी पृच्छा का उत्तर अपेक्षित है। इसका उत्तर यही है कि अभी भारतीय संविधान में भारत की भाषाओं के रूप में असमीया, उर्दू, ओड़िआ, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, गुजराती, डोगरी, तमिल, तेलुगु, नेपाली, पंजाबी, बँगला, बोरो, मणिपुरी, मराठी, मलयालम्, मैथिली, संताली, संस्कृत, सिंधी और हिंदी, इन बाईस भाषाओं के नाम आ गये हैं। भारत की सभी भाषाएँ और बोलियों की वास्तविक संख्या सैकड़ों में है। भारत की सभी भाषाएँ और बोलियाँ चार भाषा-परिवारों (भारत-यूरोपीय, द्रविड़, तिब्बत चीनी और

हमारे देश के प्राचीनतम काल में श्राय की अपनी ठेठ बोली रही होगी और उसीके माध्यम से वे विचारों का आदान प्रदान करते रहे होंगे, पर कालान्तर में जब उसे साहित्यिक रूप मिला होगा तब वह ऋग्वेद की भाषा बनी होगी। ऋग्वेद की भाषा का स्तर सर्वत्र एक-सा नहीं है।

आस्ट्रिक) की सदस्याएँ हैं जिनमें प्रायः सबकी अलग-अलग लिपियाँ हैं। लिपिगत भिन्नता के साथ-साथ सबके क्षेत्र में स्थानगत दूरी भी विद्यमान है। सभी भाषाओं और बोलियों में अलग-अलग बिना किसी प्रकार के संयोजन के साहित्य-सृजन हो रहा है। संयोजन के अभाव के कारण ही प्रथम दृष्टि में ऐसा प्रतीत होता है कि ये सब हिंदी-साहित्य, बंगला-साहित्य, तमिल साहित्य आदि हैं, इन सबका कोई समग्र रूप नहीं है, अर्थात् ये सब मिलकर भारतीय साहित्य का एक विशिष्ट स्वरूप प्रस्तुत नहीं करते। इसी भ्रम के निवारण के लिए भारतीय साहित्य की पहचान आवश्यक है। भारतीय साहित्य की पहचान भारत की साहित्यिक एवं भाषिक राष्ट्रीयता की पहचान है। यहाँ यह स्पष्ट कर लेना आवश्यक है कि भारतीय साहित्य की पहचान का प्रश्न उस युग में रचे गये साहित्य के साथ नहीं है जब सभी प्रकार की अभिव्यक्ति की माध्यम भाषा संस्कृत थी। उस समय समग्र भारतीय मनीषा संस्कृत भाषा में अभिव्यक्त होती थी, अतः उस समय का रचा गया सारा साहित्य भारतीय साहित्य के नाम से जाना और माना जाता है।

उपसंहार

"भारतीय संस्कृति का इतिहास जाति के जीवन में होने वाले विभिन्न संघर्षों एवं अन्तर्द्वन्द्वों के प्रस्फुटन का, जीवन स्रोत की सहस्त्रमुखी धाराओं के विकास का इतिहास मात्र है। अनादि काल से भारतीय संस्कृति की अपनी ही विशेष ध्वनि रही है वह है मृत्युञ्जयता, विश्व की किसी भी संस्कृति ने इतने उत्थान-पतन, इतने ज्वार-भाटे नहीं अनुभव किए जितने अपनी संस्कृति ने, निरन्तर अक्रमण के कारण उसका अंग-प्रत्यंग रुधिराक्त हो गया, परन्तु फिर भी उसने विदेशी शक्तियों के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया। वे इस सनातन संस्कृति पर अपना अधिपत्य स्थापित न कर सके।" किंतु फिर भी भारतीय संस्कृति है कि जो हजारों वर्षों से समस्त विश्व समुदाय के कल्याण की प्रार्थना गाती आ रही है-

सर्वे भवंतु सुखिनः,
सर्वे संतु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यंतु,
मा कश्चिदद्दुःखभाग्भवेत।

यही इसकी अक्षुण्णता का, सनातनता का प्रतीक है। भारत में गीत-संगीत, नृत्य, नाटक-कला, लोक परंपराओं, कला-प्रदर्शन, धार्मिक-संस्कारों एवं अनुष्ठानों, चित्रकारी एवं लेखन के क्षेत्रों में एक बहुत बड़ी सम्पदा मौजूद है जो मानवता की 'अमूर्त सांस्कृतिक विरासत' के रूप में पहचानी जाती है। ❑

भारोपीय भाषा परिवार और शोध प्रविधियाँ

डॉ. जसपाल सिंह वरवाल
दूरस्थ निदेशालय,
जम्मू विश्वविद्यालय,
जम्मू

भारत में विश्व के सबसे चार प्रमुख भाषा परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं। हम सब जानते हैं कि उत्तर भारत में बोली जाने वाली भारोपीय भाषा परिवार की भाषाओं को आर्य भाषा समूह, दक्षिण की भाषाओं को द्रविड़ भाषा समूह, ऑस्ट्रो-एशियाटिक परिवार की भाषाओं को मुंडारी भाषा समूह तथा पूर्वोत्तर में रहने वाले तिब्बती-बर्मी, नृजातीय भाषाओं को चीनी-तिब्बती (नाग भाषा समूह) के रूप में जाना जाता है।

हिन्द-आर्य भाषा परिवार

यह परिवार भारत का सबसे बड़ा भाषाई परिवार है। इसका विभाजन 'इन्डो-युरोपीय' (हिन्द यूरोपीय) भाषा परिवार से हुआ है, इसकी दूसरी शाखा 'इन्डो-इरानी' भाषा परिवार है जिसकी प्रमुख भाषाएँ फ़ारसी, ईरानी, पश्तो, बलूची इत्यादि हैं। भारत की दो तिहाई से अधिक आबादी हिन्द-आर्य भाषा परिवार की कोई न कोई भाषा विभिन्न स्तरों पर प्रयोग करती है। जिसमें संस्कृत समेत मुख्यत: उत्तर भारत में बोली जाने वाली अन्य भाषाएँ जैसे - हिंदी, उर्दू, डोगरी, पंजाबी, मराठी, नेपाली, बांग्ला, गुजराती, कश्मीरी, उड़िया, असमिया, मैथिली, भोजपुरी, मारवाड़ी, गढ़वाली, कोंकणी इत्यादि भाषाएँ शामिल हैं।

द्रविड़ भाषा परिवार

यह भाषा परिवार भारत का दूसरा सबसे बड़ा भाषायी परिवार है। इस परिवार की सदस्य भाषाएँ ज्यादातर दक्षिण भारत में बोली जाती हैं। इस परिवार की सबसे बड़ी सदस्य तमिल है जो तमिलनाडु में बोली जाती है। इसी तरह कर्नाटक में कन्नड़, केरल में मलयालम और आंध्र प्रदेश में तेलगू इस परिवार की बड़ी भाषाएँ हैं। इसके अलावा तुलू और अन्य कई भाषाएँ भी इस परिवार की मुख्य सदस्य हैं। अफगानिस्तान, पाकिस्तान और भारतीय कश्मीर के सीमावर्ती क्षेत्रों में इसी परिवार की ब्राहुई भाषा भी बोली जाती है जिस पर बलूची और पश्तो जैसी भाषाओं का असर देखने को मिलता है।

ऑस्ट्रो-एशियाटिक परिवार

यह प्राचीन भाषा परिवार मुख्य रूप से भारत में झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के ज्यादातर हिस्सों में बोली जाती है। संख्या की दृष्टि से इस परिवार की सबसे बड़ी भाषा संथाली या संताली है। यह पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, झारखंड और असम में मुख्य रूप से बोली जाती है। इस परिवार की अन्य प्रमुख भाषाओं में हो, मुंडारी, भूमिज, संथाली, खड़िया, सावरा इत्यादी भाषाएँ हैं।

चीनी तिब्बती भाषा परिवार

इस परिवार की ज्यादातर भाषाएँ भारत के सात उत्तर-पूर्वी राज्यों जिन्हें 'सात-बहनें' भी कहते हैं, में बोली जाती है। इन राज्यों में अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर, नागालैंड, मिजोरम, त्रिपुरा और असम का कुछ हिस्सा शामिल है। इस परिवार पर चीनी और आर्य परिवार की भाषाओं का मिश्रित प्रभाव पाया जाता है और सबसे छोटा भाषाई परिवार होने के बावजूद इस परिवार के सदस्य भाषाओं की संख्या सबसे अधिक है। इस परिवार की मुख्य भाषाओं में नागा, मिजो, म्हार, मणिपुरी, तांगखुल,

खासी, दफला, चम्बा, बोडो, तिब्बती, लद्दाखी, लेव्या तथा आओ इत्यादि भाषाएँ शामिल हैं।

अंडमानी भाषा परिवार

जनसंख्या की दृष्टि से यह भारत का सबसे छोटा भाषाई परिवार है। इसकी खोज पिछले दिनों मशहूर भाषा विज्ञानी प्रो. अन्विता अब्बीई ने की। इसके अंतर्गत अंडबार-निकाबोर द्वीप समूह की भाषाएँ आती हैं, जिनमें प्रमुख हैं- अंडमानी, ग्रेड अंडमानी, ओंगे, जारवा आदि।

शोध

'शोध' अंग्रेजी शब्द 'रिसर्च' का पर्याय है किन्तु इसका अर्थ 'पुन: खोज' नहीं है अपितु 'गहन खोज' है। इसके द्वारा हम कुछ नया आविष्कृत कर उस ज्ञान परम्परा में कुछ नए अध्याय जोड़ते हैं। विषय विशेष के बारे में बोधपूर्ण तथ्यान्वेषण एवं यथासंभव प्रभूत सामग्री संकलित कर सूक्ष्मतर विश्लेषण विवेचन और नए तथ्यों ,नए सिद्धांतों के उद्घाटन की प्रकिया अथवा कार्य शोध कहलाता है। शोध के लिए हिंदी में बहुत से पर्याय हैं - अनुसन्धान, गवेषणा, खोज, अन्वेषण, मीमांसा, अनुशीलन, परिशीलन, आलोचना और रिसर्च आदि। ज्ञान की किसी भी शाखा में नवीन तथ्यों की खोज के लिए सावधानीपूर्वक किए गए अन्वेषण या जांच-पड़ताल को शोध की संज्ञा दी जाती है। (एडवांस्ड लर्नर डिक्शनरी ऑफ करेंट इंग्लिश) अंग्रेजी में जिसे लोग डिस्कवरी ऑफ फैक्ट्स कहते हैं, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (सन् 1969) स्थूल अर्थों में उसी नवीन और विस्मृत तत्त्वों के अनुसन्धान को शोध कहते हैं। पर सूक्ष्म अर्थ में वे इसे ज्ञात साहित्य के पूनर्मूल्यांकन और नई व्याख्याओं का सूचक मानते हैं। दरअसल सार्थक जीवन की समझ एवं समय-समय पर उस समझ का पूनर्मूल्यांकन, नवीनीकरण का नाम ज्ञान है, और ज्ञान की सीमा का विस्तार शोध कहलाता है। पी.वी.यंग (सन् 1966) के अनुसार नवीन तथ्यों की खोज, प्राचीन तथ्यों की पुष्टि, तथ्यों की क्रमबद्धता, पारस्परिक सम्बन्धों तथा कारणात्मक व्याख्याओं के अध्ययन की व्यवस्थित विधि को शोध कहते हैं।

शोध-प्रक्रिया

शोध-प्रक्रिया उन क्रियाओं अथवा चरणों का क्रमबद्ध विवरण है जिसके द्वारा किसी शोध को सफलता के साथ सम्पन्न किया जाता है। शोध-प्रक्रिया के कई चरण होते हैं। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि शोध-प्रक्रिया में प्रत्येक चरण एक दूसरे पर निर्भर होता है। कोई चरण एक-दूसरे से पृथक एवं स्वतन्त्र नहीं होता।

शोध-प्रक्रिया के विविध चरण

1. विषय-निर्धारण
2. शोध-समस्या निर्धारण
3. सम्बन्धित साहित्य का व्यापक सर्वेक्षण
4. परिकल्पना या प्राकल्पना (Hypothesis) का निर्माण
5. शोध की रूपरेखा तैयार करना
6. तथ्य-संग्रह एवं तथ्य-विश्लेषण
7. परिकल्पना की जाँच
8. सामान्यीकरण एवं व्याख्या
9. शोध प्रतिवेदन तैयार करना

भारतीय भाषाओं में शोध और शोध के नवीन क्षत्रों को चिन्हित करने से शोध कार्य में उपयोगी मार्ग प्रस्तुत हो पाएंगे। प्रत्येक प्रान्त में विभिन्न भाषा भाषी शोधार्थी हैं जिनका मार्गदर्शन हो सके व् शोध की विभन्न प्रविधियों के प्रयोग में सफल हो सकें। सभी भारतीय भाषाओं में शोध के प्रयोगात्मक पक्ष को उजागर करने की आवश्यकता है। शोध को समाज के लिए उपयोगी होना भी एक शोधार्थी का उद्देश्य होना चाहिए। अपने अपने क्षत्रों में बोली जाने वाली भाषा और बोलियों को सरक्षित करना भी शोध का अन्य प्रकार्य होना चाहिए।

शोध प्रविधि

तुलनात्मक शोध

तुलनात्मक शोध में अध्ययन के विषयों की तुलना से नए तथ्यों का पता लगाया जाता है। तुलना करने की मानवीय प्रवृत्ति अत्यन्त प्राचीन है, जबकि तुलनात्मकता आधारित शोध अपेक्षाकृत कम पुराना है; पर बहुत नया भी नहीं है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इसमें त्वरा आई। बाद में भूमण्डलीकरण ने इसे और उन्नत किया। यह शोध साहित्य अथवा भाषा में किन्हीं दो रचनाओं या पाठों, लेखकों, काव्यान्दोलनों या किन्हीं अन्य साहित्यिक पक्षों को लेकर एक ही भाषा अथवा अन्य भाषा अथवा दो भाषाओं के स्तर पर किया जा सकता है। समाज-विज्ञान में तुलनात्मक शोध का भरपूर इस्तेमाल होता है। दुर्खिम, हॉबहाउस, व्हीलर, आदि ने सामाजिक घटनाओं और परम्पराओं के अध्ययन में इसका खूब उपयोग किया है। इसका उद्देश्य दो भिन्न आयामों के बीच साम्य-वैषम्य का पता लगाना होता है। वैषम्य बताने के लिए साम्य की खोज और साम्य बताने के लिए वैषम्य की खोज जरूरी है। अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी में यूरोप में तुलनात्मक शोध का व्यवस्थित रूप सामने आया था। सन् 1928 में प्रकाशित पुस्तक 'कमिंग ऑफ एज इन समोआ' में मार्ग्रेट मीड ने सांस्कृतिक मानवविज्ञान में तुलनात्मक शोध की शुरुआत की। इस शोध में मीड ने सामोआ गाँव के पोलिनेशियाई समाज के रहन-सहन की तुलना तत्कालीन अमेरिकी समाज से की। उन्होंने पाया कि सामोआ समाज के लोगों में एकपत्नीत्व और ईर्ष्या के लिए सम्मान नहीं था। बचपन से जवान होने तक का रास्ता सामोआ के लोगों में बहुत सरल और आसान था, जबकि अमेरिकी समाज में यह तनाव, अवसाद, और दिग्भ्रम से भरा हुआ था। आधुनिक समाज, जनजीवन एवं सभ्यता के क्षेत्र में नवविकसित तुलनात्मक शोध इस अर्थ में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं

सम्भावनापूर्ण है। इस तरह की तुलनात्मकता के जरिए नवोन्मेषशाली ज्ञान-परम्परा से परिचित होकर आन्तरिक भव्यता और वैश्विक ज्ञान-सम्पदा से अवगत हो सकते हैं। तुलनात्मक शोध की कुछ खास विशेषताएँ होती हैं- अव्वल तो इसमें दो या दो से अधिक आयाम होते हैं। इसकी सामग्री दो या दो से अधिक स्रोतों से प्राप्त करनी होती है। अन्ततः यह सैद्धान्तिक शोध में परिवर्तित हो जाता है, क्योंकि दो वस्तुओं की तुलना का आधार सैद्धान्तिक ही तो होगा।

तुलनात्मक शोध के सहारे ही हम किसी राष्ट्र अथवा विश्व के साहित्यिक-सांस्कृतिक उत्कर्ष या फिर मानवता की भावना को बेहतर समझ पाते हैं।

अन्तरानुशासनात्मक शोध

एकाधिक अनुशासनों या ज्ञान की शाखाओं से प्राप्त सूचनाओं, तकनीक, पद्धतियों, उपकरणों, विचारधाराओं, अवधारणाओं और सिद्धान्तों की सहायता से उन ज्ञान क्षेत्रों का विस्तार या समस्याओं का हल ढूँढ़ने के उद्यम के साथ किया जाने वाला शोध अन्तरानुशासनात्मक शोध कहलाता है। कार्ल पॉपर कहते हैं कि हम किसी विषय-वस्तु के नहीं, समस्याओं के अध्येता हैं, समस्याएँ किसी विषय या अनुशासन के दायरे में नहीं बँध सकती। वैसे तो हर विषय, हर अनुशासन के सम्पर्क से मनुष्य जीवन-व्यवहार की सूक्ष्मताओं को समझने की नई पद्धति ग्रहण करता है, पर भाषा और साहित्य चूँकि ज्ञान की अखण्डता का वाहक होता है, इसलिए इसमें अन्तरानुशासनात्मक शोध की आवश्यकता सर्वाधिक होने लगी है। इस पद्धति के शोध में समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक, शैली वैज्ञानिक, सौन्दर्यशास्त्री या विधानों के सूक्ष्मतर विश्लेषण से साहित्य का अध्ययन किया जाता है। अनुवाद एवं अनुवाद अध्ययन की स्थिति में अनुवाद की आवश्यकता, परम्परा, इतिहास, पद्धति, राजनीतिक-प्रशासनिक-सामाजिक परिस्थिति में अनुवाद का प्रयोजन और प्रकार्य, अनुवादक की निष्ठा एवं प्रतिबद्धता, समकालीन समाज व्यवस्था में अनुवाद के प्रयोजन आदि पर विचार करने हेतु इतिहास, भूगोल, राजनीति, समाज... सबका ध्यान रखा जाना आवश्यक होगा।

पाठ-शोध या पाठानुसन्धान

किसी रचना के विभिन्न पाठों की प्रतिलिपियों के अध्ययन, अनुशीलन एवं निश्चित सिद्धान्तों के अनुगमन द्वारा उस रचना के मूल-पाठ तक पहुँचने की प्रक्रिया को पाठ-शोध या पाठानुसन्धान कहते हैं। इसे पाठ-सम्पादन या पाठालोचन भी कहा जाता है। पाठ-शोध या पाठानुसन्धान वह बौद्धिक और शास्त्रीय विधि है, जिससे पाठ के सम्बन्ध में निर्णय देते हुए मूल-पाठ का निर्धारण किया जाता है।

भारतीय भाषाओं के परिप्रेक्ष्य में कीर्तिलता पर विचार करते हुए हिंदी साहित्य के सभी विद्वान इसे हिंदी के आदिकालीन साहित्य की महत्त्वपूर्ण कृति एवं महाकवि विद्यापति की प्रारम्भिक रचना मानते हैं। मैथिली के श्रेष्ठ आलोचक रमानाथ झा इसे जीवन के अन्तिम भाग में विद्यापति द्वारा बेमन से लिखी गई रचना मानते हैं। इस पर पाठानुसन्धान हो रहा है।

भारतीय भाषाओं में शोध प्रविधियाँ

जम्मू कश्मीर के डुग्गर क्षेत्र में डोगरी भाषा में वर्तमान में उच्च कोटि का शोध कार्य शोधार्थी कर रहे हैं। कुछ विषय और उनकी शोध प्रविधि की चर्चा हम इस शोध पत्र में करेंगे। ''डुग्गर दियें दस्तकारियाँ कन्नै सरबंधत शब्दावली दा भाशाविज्ञानिक अध्ययन'' इस डोगरी शोध कार्य में मुख्य रूप से खेतरी पद्धति (फिल्ड वर्क), प्रश्नावली पद्धति, साक्षात्कार पद्धति, प्रेक्षण पद्धति का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार एक अन्य डोगरी शोध कार्य ''डोगरी शब्द रचना च कृत प्रत्ययें दी भूमिका ते विश्लेशन'' में विभन्न भाषा विज्ञानियों से भेंटवार्ता, अन्य भाषा जिसमे हिंदी, उर्दू की पुस्तकें, शोधकर्ता, डोगरी डिक्शनरिओं का शोध प्रविधि के रूप में प्रयोग मिलता है। ''डोगरी क्हानी च चित्रित दाम्पत्य जीवन दा स्वरूप'' शोध प्रबंध में विभन्न शोध प्रविधिओं का जिसमें समस्यामूलक पद्धति, अलोचनात्मक पद्धति और अन्य भाषा शोध की विधियों का प्रयोग मिलता है।

पंजाबी भाषा में भी विभिन्न प्रविधियों का प्रयोग हम कुछ शोध कार्यो से स्पष्ट करेंगे। ''पंजाबी और डोगरी कहानियों का तुलनात्मक अध्यन्न'' शोध प्रबंध में नई प्रविधि तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग दो भारतीय भाषाओं में स्पष्ट दिखाई देता है ''जम्मू खिते दे पंजाबी लोक गीत एते लोक विश्वास'' में शोध प्रविधि के लिए खेतरी पद्धति (फिल्ड वर्क), प्रश्नावली, साक्षत्कार पद्धति आदि का प्रयोग किया गया है। उर्दू में ''जम्मू व कश्मीर में उर्दू का अदबी सहाफत का जायजा'' शोध प्रबंध में खेतरी पद्धति (फील्ड वर्क), अलोचनात्मक पद्धति आदि प्रविधियों का सार्थक प्रयोग दिखाई देता है। एक और शोध कार्य ''जम्मू ओ कश्मीर में उर्दू अफसाना निगरी का तन्कीदी जायजा'' में अलोचनात्मक पद्धति, साक्षात्कार, उर्दू रसाले,शायरों से मुलाकातें, खेतरी पद्धति (फील्ड वर्क) आदि प्रविधियों का प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

भारतीय भाषाओं में शोध और शोध के नवीन क्षत्रों को चिन्हित करने से शोध कार्य में उपयोगी मार्ग प्रशस्त हो पाएँगे। प्रत्येक प्रान्त में विभिन्न भाषा-भाषी शोधार्थी हैं जिनका मार्गदर्शन हो सके व शोध की विभन्न प्रविधियों के प्रयोग में सफल हो सकें। सभी भारतीय भाषाओं में शोध के प्रयोगात्मक पक्ष को उजागर करने की आवश्यकता है। शोध को समाज के लिए उपयोगी होना भी एक शोधार्थी का उद्देश्य होना चाहिए। अपने अपने क्षत्रों में बोली जाने वाली भाषा और बोलियों को संरक्षित करना भी शोध का अन्य प्रकार्य होना चाहिए। ❑

भारतीय कला के अंतर्गत 'धर्म' एक विशिष्ट संस्कृति प्रधान कला है। वास्तव में धर्म ही भारतीय कला का प्राण है। कथानक, कला का एक साधन है उसमें आकस्मिकता का तत्त्व भी आवश्यक है। इसी के द्वारा भावोत्तेजना आती है। 'टामस हार्डी' के शब्दों में- "सार्वकालिक और विश्वजीवन के साथ असाधारण के सामंजस्य में ही कथा और नाटक के संघटन का रहस्य छिपा है।" कला जीवन के लिए उपयोगी है इससे संबंधी धारणा का प्राधान्य यद्यपि पश्चिम अधिक रहा है।

भारतीय कला और साहित्य के विविध आयाम

डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव
सहायक आचार्य,
हिंदी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय वि.वि., लखनऊ (उ.प्र.)

भारतीय कला का इतिहास अत्यंत प्राचीन और पारंपरिक मूल्यों से संपृक्त है। भारतीय चित्रकारी हो या भारतीय संगीत, साहित्य व भाषा आदि सभी को महत्त्वपूर्ण संस्कृति वाहिका के रूप में स्थान दिया जाता है। इस प्रकार भारतीय कला संस्कृति की वाहिका है। भारतीय संस्कृति के विविध आयामों में व्याप्त मानवीय एवं रसात्मक तत्त्व उसके कला-रूपों में प्रकट हुए हैं। कला का प्राण रसात्मकता है। रस हमें स्थूल से चेतन सत्ता तक एक रूप कर देता है। विविध मन-भावों और भाव-लीलाओं आदि को कला उजागर करती है। भारतीय कला जहाँ एक ओर वैज्ञानिक और तकनीकी आधार रखती है, वहीं दूसरी ओर भाव एवं रस को सदैव प्राणतत्त्व बनाकर रखती है।

भारतीय कला को जानने के लिए उपवेद, शास्त्र, पुराण, और पुरातत्त्व और प्राचीन साहित्य का सहारा लेना पड़ता है। प्राचीनता, संस्कृति, अनामिकता, परंपरा, प्रतीकात्मकता, धर्म आदि भारतीय कला की विशेषता हैं।

प्राचीनता भारतीय चित्रकारी की सबसे प्राचीन विशेषता है। सबसे पहले प्रागैतिहासिक काल में इसके स्वरूप दिखायी देते हैं। उस समय मानव गुफाओं की दीवारों पर चित्रकारी करता था। 'भीमबेटका' चित्रकला लगभग 5000 ई. पू. से भी ज्यादा पुरानी है। 8वीं शती में अजंता और एलोरा की गुफाओं की चित्रकला सर्वोत्तम उदाहरण माना जाता है। यह चित्रकारी लोक जीवन से जुड़े विषयों को भी मूर्त कर रही है। भारतीय कला संस्कृति की वाहिका के साथ ही बाह्य सौंदर्य व आंतरिक सौंदर्य के भाव को भी महत्त्व प्रदान करती है।

अनामिकता भारतीय कला की दूसरी विशेषता है। प्राचीन समय के शिल्पियों और स्थापत्यों ने अपना नाम छुपा के रखा था क्योंकि उनके मन में अपनी सृजनता के लिए सम्मान था। वह सृजनकर्ता से अधिक सृजन को महत्त्व देते थे। शायद यही कारण है कि अधिकांश कला कृतियाँ 'अनाम' हैं।

भारतीय कला के अंतर्गत 'धर्म' एक विशिष्ट संस्कृति प्रधान कला है। वास्तव में धर्म ही भारतीय कला का प्राण है। कथानक, कला का एक साधन है उसमें आकस्मिकता का तत्त्व भी आवश्यक है। इसी के द्वारा भावोत्तेजना आती है। 'टामस हार्डी' के शब्दों में- "सार्वकालिक और विश्वजीवन के साथ असाधारण के सामंजस्य में ही कथा और नाटक के संघटन का रहस्य छिपा है।" कला जीवन के लिए उपयोगी है इससे संबंधी धारणा का प्राधान्य यद्यपि पश्चिम अधिक रहा है। लेकिन भारतीय कलावादी धर्म और राष्ट्रहित के संदर्भ में कला को अधिक महत्त्व देते हैं।

भारत में संगीत की परंपरा प्रागैतिहासिक काल से है। गिने-चुने देशों में ही संगीत की इतनी प्राचीन अवस्था मिलती है। संगीत का प्रारंभ सिंधु घाटी सभ्यता के साक्ष्य के रूप मानकर यह तथ्य पूर्णत: स्पष्ट माना जाता है कि इसका विकास इसी काल

में हुआ है।

सिंधु घाटी सभ्यता के पतन के बाद वैदिक संस्कृति में भजनों और मंत्रों में इसका स्वरूप विकसित हुआ। इसके अतिरिक्त दो भारतीय महाकाव्यों - रामायण और महाभारत की रचना में संगीत का मुख्य प्रभाव है।

हमारे भारतीय संस्कृति काल से लेकर आधुनिक काल तक में संगीत के स्वरूप परिवर्तित होते रहे हैं। प्रमुख भारतीय संगीतकारों में स्वामी हरिदास, तानसेन, अमीर खुसरो, भीमसेन गुरुराज जोशी, पंडित जसराज, सुल्तान खान आदि ने संगीत को एक नई पहचान दी है। संसार भर में सबसे प्राचीन संगीत 'सामवेद' में मिलता है। उस समय 'स्वर' को 'यम' कहते थे।

साम का संगीत से इतना संबंध था कि साम को लोग स्वर का पर्याय समझते थे। वैदिक काल में तीन स्वरों के ज्ञान को 'सामिक' शब्द से संबोधित किया जाता था। महाभारत में 'सप्त स्वरों' और गांधार का उल्लेख आता है।

वाल्मीकि रामायण में भेरी, दुंदुभि, मृदंग, पटह, घट, पणव, डिंडिम, आडंबर, वीणा आदि बाधों और जातिगायन का उल्लेख मिलता है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र भारतीय संगीत का सबसे प्राचीन ग्रंथ है। इस ग्रंथ में श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्छना, जाति और ताल का विवेचन है। भरत ने श्रुतियों का विचार स्वर की स्थापना के लिए किया है। नाट्यशास्त्र में चच्चत्पुट चाचपुट अथवा चंचुपुट, षटपितापुत्र अथवा पंचपाणि, संपत्केष्टक, अथवा तालों का उल्लेख भी किया है।

7वीं शती में तमिलनाडु के कुडुमियमालइ स्थान पर एक उत्कीर्ण लेख मिला है। जिसमें सात जातियों, सात स्वरों और कुछ श्रुतियों तथा अंतर गांधार और काकलि निषाद का उल्लेख है। 11वीं शती में मिथिला के राजा नान्यदेव ने ''सरस्वती हृदयलंकार'' ग्रंथ की रचना की। यह भरत के संगीत पर एक विस्तृत और सारगर्भ भाष्य है। पश्चिमी चालुक्यों के वंशज महाराज सामेश्वर संगीत के प्रकांड विद्वान थे। उन्होंने अपने 'अभिलाषितार्थ चिंतामणि' के चौथे प्रकरण में एक हजार एक सौ सोलह श्लोक संगीत पर लिखे हैं।

सोमेश्वर के पुत्र जगदेकमल्ल (प्रतापचक्रवर्ती) का प्रसिद्ध ग्रंथ 'संगीत चूडामणि' है। यह बहुत प्रामाणिक ग्रंथ संगीत से संबंधित है। सोमराजदेव की 'संगीत रत्नावली' संगीत के स्वर, प्रबंध, राग, ताल आदि सभी के विशद वर्णन के लिए प्रसिद्ध हैं।

12वीं शती ई. में जयदेव ने 'गीत-गोविंद' की रचना की। इसके अलावा विविध राग और तालों में प्रबंध लिखे। अपने ग्रंथों में मालव, गुर्जरी, वसंत, रामकरी, मालंगौड़, कर्णाट, देशाख्य, देशीवराड, गोंडकारी, भैरवी, वराडी, विभास आदि रूपकों, वालों का विवेचन किये।

14वीं और 15वीं शताब्दी में मुसलमानों का आगमन भारत देश में हुआ। जिससे भारतीय जनता के साथ भारतीय संगीत भी प्रभावित हुई। मुसलमानों का आगमन भारत में हुआ। जिससे भारतीय जनता के साथ भारतीय संगीत भी प्रभावित हुई। मुसलमानों के प्रभुत्व के साथ 'ईरानी संगीत' का भी प्रभाव बढ़ने लगा। सुलतान अलाउद्दीन (1295-1316) के दरबार में 'अमीर खुसरो' संगीत के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने कव्वाली गान का प्रचार किया। सितार वादक का निर्माण भी उन्हीं ने किया।

खुसरो का नाम साहित्य में भी शीर्ष पर माना गया है। भाषा वैज्ञानिक शब्द देते हैं लेकिन साहित्यकार उस शब्दों को चुनकर एक रचना को जन्म देता है। भाषा और साहित्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भाषा है तो साहित्य होगा और जहाँ साहित्य होता है वहाँ भाषा का होना स्वाभाविक है। धीरे-धीरे भाषा स्वत: गतिशील हो जाती है। आज विश्व में हिंदी भाषा अपनी पहचान बना चुकी है। हिंदी भाषा का साहित्य विपुल है। आज विश्व में हिंदी भाषा को लेकर लोगों में अत्यंत उत्साह है। इस प्रकार भाषा के विकास का एकमात्र आधार है- समन्वय। हिंदी भाषा ने केवल व्यक्ति के स्तर पर ही नहीं अपितु समूचे राष्ट्र को भी एकता में बांध दिया है।

भाषा के प्रयोग की एक विशेष विधि को साहित्य कहते हैं। इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि भाषा के प्रयोग की कोई दूसरी विधि भी है जो विशिष्ट नहीं है। साहित्य भाषा के द्वारा, भाषा में रचा जाता है और भाषा के रूप में ही वर्तमान रहता है। दो तरह के साहित्य का स्वरूप वर्तमान में परिलक्षित होता है। वाचिक साहित्य और लिखित साहित्य। वह साहित्य जिसमें लक्षण छंदबद्ध और गेयता हो, वह वाचिक साहित्य है। लिखित साहित्य उसे कहते हैं जो मुद्रित हो और पुस्तक के रूप में लिखी गयी हो। साहित्य एक विशिष्ट विषय पर, एक विशिष्ट प्रकार की लिखित या बोली जाने वाली रचना को संदर्भित करती है। भाषा माध्यम होता है और साहित्य उस माध्यम से समाने रखी गयी बात है। हिंदी, अंग्रेजी आदि भाषाएँ हैं और उनमें लिखी गयी कहानियाँ, कविताएँ आदि उस भाषा का साहित्य हैं।

'साहितस्य भाव: साहित्यम' जिसमें सहित का भाव हो, उसे 'साहित्य' कहते हैं। भाषा साहित्य की जरूरी इकाई है। दूसरी तरह देखा जाए तो भाषा के माध्यम से साहित्य का निर्माण होता है। भाषा के लेखकों द्वारा किसी विशेष भाग को साहित्य का विषय बनाया जाता है। भाषा अभिव्यक्ति का विषय है जबकि साहित्य अभिव्यक्तियों का संग्रह है। साहित्य में सबसे पुरानी विधा 'ऋग्वेद' है। उसके बाद रामायण और महाभारत को माना जाता है। इनमें से सभी साहित्य हमारे राष्ट्र को गौरव प्रदान करते हैं। राष्ट्र को समुचित एकत्रित करने में भाषा और साहित्य दोनों की बराबर भूमिका है।

इस तरह भारतीय कला, संगीत, भाषा और साहित्य का आपस में घनिष्ठ संबंध है। व्यापक स्तर पर यह राष्ट्र को उस संस्कृति से जोड़ता है जिसमें मनुष्य अपनी परंपरा को जीवंत पाता है और आगे उसे विकसित भी करता है। ❑

विभाजन की त्रासदी और हिंदी साहित्य

डॉ. जयसिंह यादव

सहायक आचार्य,
हिन्दी विभाग सिद्धार्थ
विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर (उ.प्र.)

स्वतंत्रता के 75 साल बाद बँटवारे के साहित्य का पुनर्पाठ अनिवार्य रूप से भारतीय उप महाद्वीप के लिए एक संजीवनी वटी सिद्ध है। स्वतन्त्र भारत के उदय ने हमारे साहित्यकारों और साहित्य दोनों को अनेक प्रकार से प्रेरित किया है। भारतीय उप महाद्वीप के विभाजन का पीढ़ियों पर विनाशकारी और व्यापक प्रभाव पड़ा। 20वीं शताब्दी को साहित्य में अनेक तरह से विभाजित किया। आदि कवि वाल्मीकि की वाणी भी क्रौंच वध के कारुणिक दृश्य को देखकर ही मुखर हुई थी। भर्तृहरि ने भी करुण रस को ही प्रधान माना है। महादेवी के काव्य में सर्वप्रथम तत्त्व वेदना है। वेदना का आनन्द वेदना के लिए आत्मसमर्पण है। वे मानती हैं- ''दु:ख मेरे जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधकर रखने की क्षमता रखता है। असंख्य सुख चाहे हमें मनुष्यता की एक पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सके, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता।'' दु:ख से जीवन में जो बल आता है, उससे आत्मा उज्ज्वल रहती है। महाकवि जयशंकर प्रसाद भी इसी वेदना से आप्लावित होकर 'कामायनी', 'आँसू' तथा 'लहर' जैसी उत्कृष्ट रचनाएँ हिंदी साहित्य को प्रदान कर सके। निराला ने 'दु:ख ही जीवन की कथा रही' कहा है। 'अरस्तू का त्रासदी' भी महत्त्वपूर्ण पुस्तक है, परन्तु यह साहित्य की किसी विधा विशेष पर प्रकाश नहीं डालती, अपितु त्रासदी के सैद्धान्तिक पक्ष की विवेचना करती है।

त्रासदी शब्द 'त्रास' से बना है। डॉ. ओझा ने 'त्रास' शब्द के सात अर्थ स्पष्ट किये हैं। उनके अनुसार 'त्रास' शब्द की आत्मा में कम्पन, वेग और गत्यात्मकता के भाव सन्निहित हैं। त्रास शब्द के सात अर्थ हैं- वेग, मणि का दोष, सरकना या फिसलना, पीड़ा या वेदना, भय, कंपन और चकित होना। 'अरस्तू' ने त्रासदी की परिभाषा त्रासदीकारों की विशिष्ट रचनाओं के लक्षणों का पूर्ण योग है। ''त्रासदी मानवीय जीवन के गम्भीर, पूर्ण और विस्तृत कार्य-व्यापार का अनुकीर्तन है। इसकी भाषा, लय और संगीत के मिश्रण से पूर्ण एवं उदात्त होती है। इसकी रचना वर्णन शैली से नहीं, प्रत्युत अभिनय-शैली से सम्पन्न होती है। इसमें नाट्यकार ऐसी घटनाओं की संयोजना करता है जो करुणा और भय के भावावेगों को उद्दीप्त करके उनका प्रशमन अथवा परिष्कार करने में समर्थ हो।'' इस परिभाषा के आधार पर कहा जा सकता है-

त्रासदी कार्य की अनुकृति है। सभी कलाओं के समान त्रासदी का आधार भी अनुकरण है। इसका कार्य गहन गम्भीर, परिपूर्ण तथा निश्चित परिमाण से समन्वित होता है। कार्य को वर्णनात्मक रूप में नहीं, बल्कि नाटकीय रूप में प्रेक्षकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। इसकी भाषा, लय, ताल, गीत आदि से अलंकृत होती है। अलग-अलग तरीकों का प्रयोग करते हुए त्रासदी के कहीं केवल पद्य तो कहीं गीतों

का समावेश होता है। कार्य की गम्भीरता के कारण इसमें त्रास और करुणा को उत्पन्न करने वाली घटनाएँ प्रदर्शित की जाती हैं। त्रास एवं करुणा आदि मनोविकारों का उचित विवेचन किया जाता है। यही त्रासदी का उद्देश्य है।

मिंटों ने अरस्तू के त्रासदी विवेचन को आधार मानकर परिभाषा इस प्रकार दी है– ''त्रासदी का सम्बन्ध गम्भीर घटनाओं से है जो पूर्ण और सुसम्बद्ध होती है। उसकी भाषा में गम्भीरता और गरिमा होती है। यह वर्णन प्रधान नहीं होती, बल्कि बोलते-चालते और क्रियाकलाप करते हुए पात्रों की अवतारणा करती है। यह प्रेक्षक में करुणा और भय को जागरूक कर उसका मानसिक परिष्करण करते हुए आह्लाद की निष्पत्ति करती है।''

कैसलवेत्रों ने अरस्तू और मिन्टों का अनुकरण करते हुए लिखा है – ''इसकी शैली वर्णन प्रधान नहीं होती। करुणा और भय के भाव माध्यम से यह उदात्त भावों में परिष्करण और संतुलन सम्पन्न करती है। ड्राइडन ने अरस्तू की मान्यताओं को स्वीकार किया है। उन्होंने अरस्तू के समान ही माना है कि – ''त्रासदी वर्ण्य नहीं, बल्कि अभिनेय रूप में एक पूर्ण महान और सम्भाव्य कार्य-व्यापार का अनुकरण करती है और इसका उद्देश्य हमारे मन में करुणा और त्रास भावों को उद्वेलित कर इनका विवेचन करना होता है।''

सत्रहवीं शताब्दी में जॉन मिल्टन और सैल्टन ने 'सैम्सन ऐग्निटीज' नाम के विख्यात त्रासदी ग्रंथ की रचना की। उनका मत है कि– ''त्रासदी जिस रूप में प्राचीन काल से विरचित होती थी, उसी रूप में सदा सर्वाधिक उदात्त, गम्भीर, आदर्श एवं उपादेय मानी गई है।'' इनके मत अनुभूति से युक्त हैं, क्योंकि ये स्वयं भी कवि और त्रासदीकार रहे हैं।

नीत्शे ने कहा– ''उन्नीसवीं शताब्दी में परम्परा विरोधी विचारक के रूप में प्रसिद्ध त्रासदी वह उत्कृष्ट कला है, जो जीवन के प्रति आस्था की प्रतिष्ठा करती है। हमें उनकी वास्तविक पीड़ा से मुक्त रखती है।'' वह जीवन के कठिनतम् परन्तु अनिवार्य युद्धों और द्वन्द्वों को हमारे सामने उपस्थित करती है। त्रासदी व्याख्याताओं में महत्त्वपूर्ण नाम इब्सन का है, घटना को आधार बनाकर भी त्रासदी की रचना हो सकती है। इब्सन यथार्थ पर अधिक बल देते हैं।''

पाश्चात्य दृष्टि से त्रासदी की व्याख्या करने पर हमारे सामने निम्न सिद्धांत आते हैं, जिनमें प्रथम है– नीत्शे का समन्वयवाद, गिलबर्ट मर्रे का परिवर्तनवाद। अभिनवगुप्त का रस विवेचन अधिक प्रामाणिक होने के कारण सर्वमान्य समझा जाता था। आचार्य विश्वनाथ भी करुणा की सुखात्मकता को स्वीकार करते हैं।

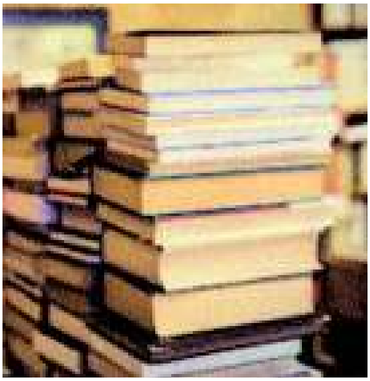

करुणा के कारण हमारे अश्रु निकलते हैं। हृदय के द्रवित हो जाने से मन हल्का हो जाता है और हमें आनन्द की अनुभूति होती है। इनका मत है कि – ''व्यवहार में लौकिक शोक, हर्ष आदि कारणों से लौकिक शोक, हर्ष आदि उत्पन्न होते हैं– यह नियम सही है, परन्तु काव्यगत विभावों से सुख ही प्राप्त होता है। इस नियम के प्रतिपादन में कोई त्रुटि नहीं है। भरतमुनि करुण रस के तत्त्वों के विषय में लिखते हैं कि इसमें चिन्ता, दीनता, ग्लानि, रुदन, जड़ता और व्याधि तथा मरण उभरकर आते हैं। करुण की उत्पत्ति शोक के स्थायी भाव से होती है। आनन्द के विश्रान्तिपूर्ण अनुभव को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी स्वीकार करते हैं।

डॉ. नगेन्द्र कहते हैं कि सबसे पहला तत्त्व है रंग-विधान। इसके उपरान्त गीत और पदावली का स्थान होगा, क्योंकि ये अनुकरण के माध्यम हैं। 'पदावली' से अभिप्राय शब्दों के छन्दोबद्ध विन्यास मात्र का है, 'गीत' शब्द का अर्थ सभी के लिए सुबोध है। इस प्रकार प्रत्येक त्रासदी के अनिवार्यतः छः अंग होते हैं जो उसके सौष्ठव का निर्धारण करते हैं– कथानक, चरित्र-चित्रण, पद-रचना, विचार-तत्त्व, दृश्य-विधान तथा गीत। इन तत्त्वों का प्रयोग प्रत्येक कवि ने किया है। प्रत्येक नाटक में दृश्य-विधान रहता है और साथ ही चरित्र-चित्रण, कथानक, पदावली, गीत और विचार-तत्त्व भी।

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है घटनाओं का संगठन। त्रासदी व्यक्तित्व की अनुकृत नहीं है – बल्कि कार्य तथा जीवन की अनुकृति है, क्योंकि जीवन कार्य-व्यापार का ही नाम है और उसका उद्देश्य भी एक प्रकार का व्यापार ही है।

कथानक त्रासदी का प्रमुख अंग है– मानों त्रासदी की आत्मा है, चरित्र का स्थान दूसरा है। त्रासदी कार्य-व्यापार की अनुकृति है।

तीसरा स्थान विचार का है – विचार का अर्थ है प्रस्तुत परिस्थिति में जो सम्भव और संगत हो, उसके प्रतिपादन की क्षमता। ''चारित्र्य उसे कहते हैं जो किसी व्यक्ति की रुचि-विरुचि का प्रदर्शन करता हुआ नैतिक प्रयोजन को व्यक्त करे।'' ऐसे वक्तव्य जिनमें वक्त न तो किसी वस्तु में रुचि दिखाता है और न विरुचि, चरित्र के व्यंजक नहीं होते। विचार वहाँ विद्यमान रहता है, जहाँ किसी वस्तु का भाव या अभाव सिद्ध किया जाता है या किसी सामान्य सत्य की व्यंजक सूक्ति का आह्वान होता है।

त्रासदी का कारण केवल व्यक्ति स्वयं न होकर पूरी व्यवस्था है। वैयक्तिक स्तर पर त्रासदी को उभारकर अज्ञेय ने 'नदी के द्वीप', नरेश मेहता ने 'डूबते मस्तूल', कमलेश्वर ने 'डाक बंगला', भीष्म साहनी ने 'बसंती' तथा 'कड़ियाँ' आदि उपन्यास लिखे। सभी चरित्रों को त्रासद परिस्थितियों से गुजरकर जीना पड़ता है।

आधुनिक युग में मानसिक विघटन के कारण है- कुंठा, घुटन, अजनबीपन, अलगाव और पीड़ा-वेदना। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के उपन्यास इसी घुटन, टूटते सम्बन्धों से त्रस्त व्यक्तियों, मानवमन के खोखलेपन और अहं से उत्पन्न पीड़ा पर लिखे गये। इन उपन्यासों में पात्रों की वेदना, करुणा को जगाती है। अमृत लाल नागर का 'महाकाल', यशपाल का 'झूठा-सच', जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का 'मुरदाधर', वृन्दावन लाल वर्मा का 'गढ़ कुंडार', भीष्म साहनी का 'तमस' आदि ऐसे ही उपन्यास हैं, जिनमें युद्ध की विभीषिका, राजनैतिक कारणों से मरते व्यक्तियों की कराहें त्रास उत्पन्न करती हैं। अधिक बल करुणा पर ही दिया गया है, क्योंकि मानसिक तनाव का दुःख करुणा की सृष्टि अधिक करता है।

प्रेमचन्द की यथार्थवादी दृष्टि का प्रभाव भीष्म साहनी पर भी पड़ा है। उपन्यास 'तमस', 'कड़ियाँ', 'बसंती', 'झरोखे', 'मय्यादास की माड़ी' और 'कुंतो' इन सभी उपन्यासों में त्रासदी का कोई-न-कोई रूप देखने को मिलता है जो अपने यथार्थ-रूप में ज्यादा व काल्पनिक रूप में कम चित्रित है। भीष साहनी ने आम लोगों, गरीब समाज, राजनीतिज्ञों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों को व स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं व दृश्यों को अंकित किया है। भीष्म साहनी ने इन सबके लिए यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाया है और त्रासदी को विभिन्न रूपों में समाज के समक्ष अभिव्यक्त किया है।

20वीं सदी में दुनिया ने कई विभाजन देखे हैं जैसे इजराइल-फिलिस्तीन, आयरलैंड-इंग्लैण्ड, जर्मनी का विभाजन (और निश्चित रूप से इसका पुनर्मिलन), पूर्व यूगोस्लाविया का विभाजन, कोरिया और वियतनाम का विभाजन आदि। प्रत्येक मामलें में विभाजन प्रस्ताव को एक मजबूत राज्य-तंत्र द्वारा कमजोर पक्ष पर अपने विस्तार के लिए लागू किया गया था। उसकी देखरेख की गई, जिसने 'राष्ट्रवाद के क्षण को उकसाया, जिसने नई राष्ट्रीय पहचान पैदा की। इसलिए विभाजन साहित्य का पता लगाने के लिए विषम पहचानों के चश्मे से देखना आवश्यक है।

बांग्लादेशी लेखक अख्तरुजमान इलियास के दो बांग्ला उपन्यास द सोल्जर इन द एटिक (चिलेकोधार सेवाई, 1987, पाकिस्तान / बांग्लादेश विभाजन), यूगोस्लाविया के लेखक द्रब्रावका उग्रेसिक का उपन्यास द म्यूजियम ऑफ अनकंडीशनल सरेंडर (1988) और द मिनिस्ट्री ऑफ पेन (2004) दोनों यूगोस्लाविया के विभाजन के अनुरूप हैं। अन्त में यह गीतांजलि श्री के हिंदी उपन्यास रेत समाधि (टूम ऑफ सैण्ड, 2018, भारतीय विभाजन) का उल्लेख करने योग्य है, जिसके अंग्रेजी अनुवाद को हाल ही में अन्तरराष्ट्रीय बुकर पुरस्कार प्राप्त हुआ है। जिन लेखकों ने विभाजन की पीड़ा को झेला है, उन्होंने उसे स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है और यह राष्ट्र-राज्य के जटिल प्रक्षेपण के साथ जारी है।

विभाजन साहित्य का यह पूरा दायरा परस्पर-विवादात्मक सामाजिक-राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता और सांस्कृतिक विमर्श के एक क्षेत्र के रूप उभरा

भारतवर्ष की एकता, अखण्डता और देश प्रेम का सरस दाग सिर्फ हिन्दी साहित्य में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में यही अनुगूँज पूरे विश्व में हो गई। पंडित अम्बिका दत्ता व्यास ने 'शिवराज विजयम्' नामक उपन्यास में शिवा जी का वर्णन करते हुए स्वतन्त्रता का विगुल बजाया है। हिन्दी में 'उसने कहा था', 'सुखमय जीवन' और बुद्ध का कांटा के रचनाकार पंडित चन्द्रधर शार्मा 'गुलेरी' ने संस्कृत में रचनाएँ कीं। 1920 से 1922 तक महामना पं. मदन मोहन मालवीय के आदेश पर ये अध्ययन कार्य किया था।

भारत तीन बार विभाजित राष्ट्र है, जहाँ तीन अलग-अलग देशों के गठन के लिए तीन विभाजन हुए हैं। यदि समयरेखा में देखा जाए तो 1905, 1947 और 1971 के बाद की घटनाओं ने पाकिस्तान, बांग्लादेश और भारत के नए कॉन्फिगर किए गए राष्ट्र के साथ आधुनिक दक्षिण एशिया को आकार दिया है। ब्रिटिश भारत, बंगाल प्रान्त और पंजाब प्रांत के विभाजन ने भारत के उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया को पूरा किया। सामाजिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रगति की इस जटिल प्रक्रिया के साथ, यह देखा गया है कि भाषा ने ऐतिहासिक वास्तविकताओं को एकीकृत या विघटित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

दंगा-लूट-आतंक, जीवन की हानि, शरणार्थी संकट, मनोवैज्ञानिक आघात और बाद में नुकसान की विरासत ने भारतीय लेखकों की उस पूरी पीढ़ी को हिलाकर रख दिया है, जिन्होंने विभाजन की पीड़ा का अनुभव किया है। यह अब स्वीकृत तथ्य है कि इसमें लगभग 10 लाख लोग मारे गए, हालाँकि जानकारों ने इससे कहीं अधिक (20 लाख) का दावा किया है।

यह विभाजन की प्रक्रिया में सतत तबाही - ''एक जटिल मानव त्रासदी'' की विशालता को दर्शाता है। 1946 में 'ग्रेट कलकत्ता किलिंग' से लेकर नोवाखाली दंगे तक, अमृतसर से लेकर लाहौर तक सभी जगह भयावह और विचित्र नजारा विभाजन के एक और चेहरे- नए स्वतन्त्र भारत के उद्भव पर अवांछित स्थितियों का निर्माण कर रहा था। इतिहास की प्रमुख आवाजों का जिक्र करते हुए मुशीरुल हसन ने टिप्पणी की - ''स्वतन्त्रता और विभाजन के ऐतिहासिक वृतांतों से अधिक, विस्थापना के व्यक्तिगत इतिहास, भारतीय राष्ट्रवाद, धर्मनिरपेक्षता, अहिंसा और वास्तव में लोकतांत्रिक देश के महान आदर्शों के साथ विश्वासघात को दर्शाते हैं।''

विभाजन पर थोड़ी बहुत कविताएँ और नाटक भी लिखे गये हैं। हिंदी और उर्दू के लेखक इस क्षेत्र में अग्रणी थे। इनमें शामिल हैं- सआदत हसन मंटो, शायद भारतीय विभाजन के सबसे बेहतरीन लेखक हैं, जिन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन में विभाजन की हिंसा, अनिश्चितता, आघात का व्यक्तिगत जीवन में अनुभव किया और विभाजन की घटना के लिए मानव वृत्ति के पारस्परिक सम्बन्ध को कल्पना में पिरोया। 'ठंडा गोश्त', 'टोबा टेक सिंह', 'खोल दो', 'डॉग ऑफ टिटवाल' जैसी कहानियों को भारतीय सन्दर्भ में लिखे गए विभाजन के आधार की अब तक की सबसे गहरी याद के रूप में पढा जा सकता है। फैज अहमद फैज ने अशांति के समय कुछ यादगार शायरी और नज्म लिखीं। पश्चिमी पक्ष के कई उर्दू और हिंदी लेखकों द्वारा लिखित पर्याप्त स्मृति लेख जैसे कृष्ण चंदर की लघु कहानी (पेशावर एक्सप्रेस), कुर्तुलेन हैदर (आग का दरिया, 1959), यशपाल (झूठा सच, 1958-60), नसीम हिजाजी (खाक और खून), राही मासूम रजा (आधा गाँव), मनोहर मांगोनकर (ए बेंड इन द गंगा, 1964), रजिया भट्ट (बानो), इतिहार हुसैन (बस्ती, 1979), अमृता प्रीतम (पिंजर, 1950), भीष्म साहनी (तमस, 1987), के.एस. दुग्गल (मां प्यो लई, 1974), खुशवंत सिंह (ट्रेन टू पाकिस्तान, 1990), कमलेश्वर (कितने पाकिस्तान, 2000) आदि। ये दर्दनाक अनुभव, हिंसा, बलात्कार और महिलाओं का अपहरण शरणार्थी की पीड़ादायक स्मृति और जीवन के अज्ञात भाग्य के बारे में है। के.एस. दुग्गल ने 'बंद दरवाजा' (1959) नामक कविताओं का एक संग्रह और शीर्षक 'ढोया हो या बूआ' (आधा बंद दरवाजा) एक संग्रह निकाला।

विभाजन के पचास वर्षों के बाद इन शीर्षकों का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा- ''पंजाब के विभाजन और उसके परिणामस्वरूप होने वाले विस्थापन जैसे दर्दनाक अनुभव और इससे प्रभावित लोगों पर हुए अत्याचार और दु:ख के बारे में लिखना आसान है, लेकिन यह इतना भी आसान नहीं है, जितना लगता है। ऐसा लगता है कि जिसने भी इस विषय पर लिखने का प्रयास किया, उसमें वे संतुलन नहीं बना पाये। दरअसल इसका कारण सर्वनाश के लिए एक पक्ष या दूसरे को पूरी तरह से जिम्मेदार ठहराने की प्रवृत्ति रही है।''

कृष्णा सोबती ने अपने आखिरी उपन्यास 'ए गुजरात हियर, ए गुजरात देयर' (2017) में व्यक्त किया कि बँटवारे में अपने बचपन की दोस्त की हत्या की याद में वह कैसे जीवन भर विचित्र-सी वेदना में रही थीं। विभाजन हिंसा का विषयगत स्वभाव और इसकी अनिश्चितता किसी तरह एक पैटर्न दे रही है, जिसका अब पता लगाया जा सकता है।

बंगाल विभाजन पर बंदोपाध्याय के तीन समकालीन (ताराशंकर, माणिक और विभूतिभूषण) की अभिव्यक्ति का साथ-साथ पता लगाया जा सकता है। ऋत्विक घटक शायद सबसे बेहतरीन कलाकार थे, जिन्होंने विभाजन के माहौल को माव अस्तित्व की असुरक्षा को गहरी समझ के साथ चित्रित किया था। 'मेघे ढसका तारा', 'कोमलगांधार', 'सुवर्णलता' को वर्षों तक याद किया जा सकता है। नेमाई घोष के 'चिन्नामूल' ने शरणार्थी समय को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया। जीवनानन्द दास (जलपाईहाटी), अमरेन्द्र घोष (भंगचे सुधु भंगचे), नरेन्द्रनाथ मित्रा (पलंको, चेनामहल), अमियाभूषण मजूमदार (निर्बास, गढ़खण्ड), सांता सेन (पितामही), अन्नदासंकर रे (क्रांतोदर्शी), नारायण सान्याल (बकुलतला पीएल कैंप), सुनील गंगोपाध्याय (अर्जुन, पूर्व पश्चिमी), समरेश बसु (सौदागर, दअब), ज्योतिर्मयी देवी (ई-पार गंगा ओ - पार गंगा), अतिन बंदोपाध्याय (नीलकंठ पाखीर खोजे, मानुषेर घरबारी, ईश्वर बागान त्रिलॉजी), गौर किशोर घोष (जल पोरे पता नरे, प्रेम नेई), प्रफुल्ल रे (के पातर नूको, सतोधरय बोए जय), देब्स रे (बरिसलर जोगेन मंडल, रिफ्यूजी), शिरसेन्दु मुखोपाध्याय (घुनपोका), हसन अजीजुल का (आगुनपाखी), अमर मित्र (धुलोमती, दशमी दिबासे, कुमारी मेघेर देश चाई) इन लेखकों ने योगदान दिया।

1950 के दशक से भारतीय विभाजन इतिहास लेखन अच्छी तरह से विकसित हुआ है। पहले पाँच दशकों में यह उच्च राजनीति को समर्पित था और धीरे-धीरे नारीवादी रुख की नई रोशनी, उत्तरजीवी के आख्यान, जाति के दृष्टिकोण आदि पर आधारित हो गया। बी.आर. अम्बेडकर की पाकिस्तान या भारत का विभाजन (1945), डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की 'अवेक हिन्दुस्तान' (1945), लेरी कोलिन्स और डोमिनिक लैपिएरे की 'फ्रीडम एट मिडनाइट' (1975) और 'इण्डिया विन्स फ्रीडम' (मौलाना अबुल कलाम आजाद) आदि।

एक भारत के विभाजन के बारे में आलोक भल्ला की कहानियाँ खण्ड-1, 2 और 3 (1994) है, जिसमें 63 भारतीय लघु कथाओं का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया है। उन्होंने विभाजन की कहानियों को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया, ''जो इन तरीकों को दर्शाती हैं कि जिनमें लेखकों ने उन घटनाओं को समझने की कोशिश की जो अन्यथा अकल्पनीय थीं।'' (स्टरोजी अबाउट द पार्टिशन ऑफ इण्डिया (2013) एड आलोक भल्ला मनोहर, नई दिल्ली)

भारतवर्ष की एकता, अखण्डता और देश प्रेम का सरस दाग सिर्फ हिंदी साहित्य में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में इसकी अनुगूँज पूरे विश्व में हो गई। पंडित अम्बिका दत्त व्यास ने 'शिवराज विजयम्' नामक उपन्यास में शिवाजी का वर्णन करते हुए स्वतन्त्रता का बिगुल बजाया है। हिंदी में 'उसने कहा था', 'सुखमय जीवन' और बुद्ध का कांटा के रचनाकार पंडित चन्द्रधर शर्मा 'गूलेरी' ने संस्कृत में रचनाएँ कीं। 1920 से 1922 तक महामना पं. मदन मोहन मालवीय के आदेश पर ये अध्ययन कार्य किया था। ❑

स्वराज 75 और राष्ट्रीय शिक्षा नीति

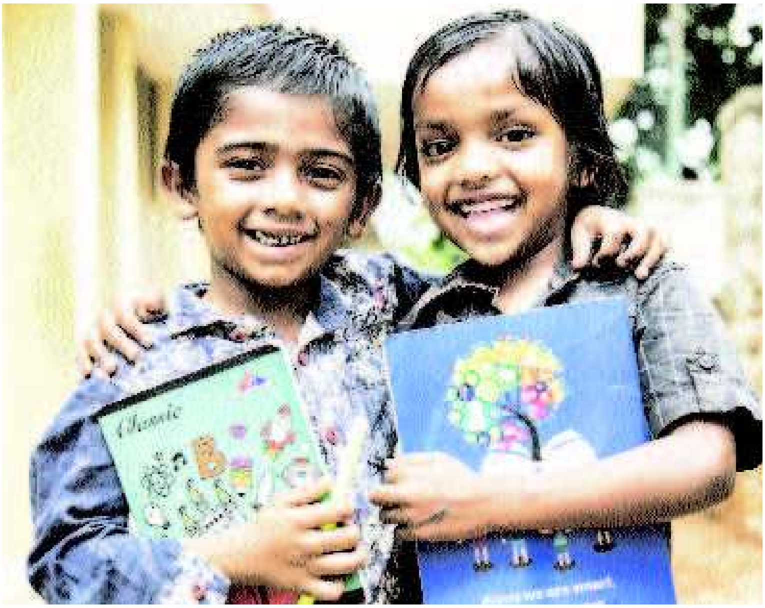

विवेकानन्द उपाध्याय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी (उ.प्र.)

किसी भी देश की सबसे बड़ी पूँजी उसके योग्य और सक्षम नागरिक ही होते हैं। चरित्र, ज्ञान और कौशल युक्त नागरिक ही योग्य और सक्षम कहे जाते हैं। योग्य और सक्षम नागरिक ही किसी भी प्रकार की व्यक्तिगत अथवा सामूहिक चुनौती को अवसर में बदल डालते हैं। शिक्षा ही वह माध्यम है जो ऐसे योग्य और सक्षम नागरिकों का निर्माण करती है। पहली बार भारत में शिक्षा सार्वजनिक विमर्श का विषय बना है। यह सबसे सकारात्मक बात इस प्रसंग में हुई है। सरकार और समाज दोनों ही स्तरों पर इस बार शिक्षा को लेकर एक विशेष जागरूकता दिखायी दे रही है। स्वयं प्रधानमंत्री जी ने शिक्षा नीति को लागू करने में रुचि दिखायी है। शिक्षा ही है जो देश के वर्तमान और भविष्य दोनों को आकार देती है। इसलिए जो लोग देश और समाज की तनिक भी चिंता करते हैं उन्हें शिक्षा के स्वरूप पर और स्थिति पर अवश्य ही विचार करना चाहिए। कोई यह सोच सकता है कि स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी हम अपनी शिक्षा को लेकर आज भी विचार ही कर रहे हैं। क्या यह किसी विडंबना से कम है? शिक्षा को तो स्वतंत्रता के बाद पहली प्राथमिकता दी जानी चाहिए थी। दुर्भाग्यवश ऐसा न हो सका। पर, आज यह अवसर उपलब्ध हुआ है। यह हमारी औपनिवेशिक शिक्षा ही थी जिसने भारत के स्वराज को जमीन पर साकार नहीं होने दिया। इसलिए स्वराज की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि हम अपनी शिक्षा को औपनिवेशिक जकड़बंदी से मुक्त करें। अपने बच्चों को अपनी भाषा में अपनी शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होना ही चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति इस दिशा में एक बड़ा कदम है। पहली बार तकनीकी विषयों की पढ़ाई भी भारतीय भाषाओं में होने की शुरुआत हुई है। भाषा का प्रश्न शिक्षा में बड़े ही महत्त्व का होता है क्योंकि भाषा दृष्टि और सृष्टि दोनों की ही भूमिका निभाती है। विदेशी भाषा शिक्षा के भारतीयकरण के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा थी जो इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने लगभग दूर कर दी है।

भारत ज्ञान की सभ्यता और राष्ट्र रहा है। भारतीय ज्ञान की ख्याति संपूर्ण दुनिया में अनादिकाल से रही है। भारत अंग्रेजों के आगमन तक अगर दुनिया का सबसे समृद्ध समाज था तो अपनी शिक्षा के कारण ही। जिस दिन से भारत में विदेशी शिक्षा का फंदा पड़ा उसी दिन से भारत की समृद्धि और सौभाग्य घटने लगा और भारत दुनिया के गरीब देशों मे गिना जाने लगा। ज्ञान के साथ भारत में चारित्रिक पूँजी और श्रेष्ठता का भाव भी सदैव विद्यमान रहा। फाह्यान से लेकर अलबरूनी इत्यादि विदेशी यात्रियों नें भारत के नागरिकों के श्रेष्ठता बोध और जीवन की उत्कृष्टता की विपुल चर्चा की है और प्रमाण दिए हैं। अंग्रेजी राज बढ़ने के साथ ही भारतीयों का चारित्रिक पतन भी बढ़ता गया। अंग्रेजी पढ़ा लिखा वर्ग अपने ही लोगों से कट कर उनके शोषण का यंत्र बन गया। इसलिए भारतीय भाषाओं में भारत की आवश्यकताओं और प्रकृति के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था भारतीयों का अधिकार और कर्तव्य दोनों ही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति पहली शिक्षा नीति है जो भारत केन्द्रित, शिक्षार्थी केन्द्रित तथा विद्यार्थियों के समग्र विकास पर बल देती है। भारतीय शिक्षा में अंग्रेजी शासकों ने अपनी आवश्यकता के लिए भारतीयों में आत्मघृणा तथा आत्महीनता भरने के लिए भयानक व्यवस्था की थी। पर स्वतंत्रता के बाद भी उस कुव्यवस्था को बहुत कुछ बनाए रखा गया। इसलिए सबसे बड़ी वस्तु है भारतीयों के आत्म का

जागरण और उनके आत्मबल की वृद्धि। दूसरी बात है कि हमारी शिक्षा में जानकारी और सीखने के बीच बहुत बड़ा और गहरा पार्थक्य होना। यह शिक्षा नीति उसकी भरपायी करने वाली है। तीसरी बात यह कि हमारी शिक्षा में प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय तक के समांतर कोचिंग और ट्यूशन उद्योग का भयानक विस्तार। उसका होना ही हमारी शिक्षा व्यवस्था, पद्धति और शिक्षकों की सबसे बड़ी आलोचना है। इसने विद्यार्थियों पर बोझ और तनाव बढ़ाया है और शिक्षा को खर्चीला बना दिया है। द प्रिंट के एक लेख में दर्शाया गया है कि शिक्षा मंत्रालय (तत्कालीन केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय) द्वारा गठित एक विशेषज्ञ समिति के 2015 के अनुमान के अनुसार, कोचिंग संस्थानों का वार्षिक राजस्व 24,000 करोड़ रुपये था। पुणे स्थित कंसल्टेंसी फर्म इंफिनियम ग्लोबल रिसर्च की मानें तो मौजूदा समय में भारत के कोचिंग उद्योग का बाजार राजस्व 58,088 करोड़ रुपये तक पहुँच चुका है। इस इंडस्ट्री के 2028 तक 1,33,955 करोड़ रुपये तक पहुँच जाने का अनुमान है।

भारत अभी भी अपने ज्ञान के लिए विदेशी विश्वविद्यालयों का मुखापेक्षी है। हमें दृढ़ता पूर्वक यह घोषणा करनी होगी कि हम इस बौद्धिक दारिद्रय को समाप्त करेंगे तथा अपने शिक्षण संस्थानों को अंतरराष्ट्रीय स्तर का बना कर ही छोड़ेंगे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने हमें यह अवसर प्रदान किया है कि हम ऐसा संकल्प ले सकें और उसे पूरा भी कर सकें। यह हमारा राष्ट्रीय दायित्व है। इसके बिना भारत को बौद्धिक स्वराज नहीं प्राप्त होगा और जब तक बौद्धिक स्वराज हमें नहीं प्राप्त होता तब तक देश के दुखों का अंत नहीं है। भारत प्रतिभाओं का भंडार है और अपनी सामर्थ्य से कुछ कर गुजरने वालों का समाज है। इसलिए आज अगर जीवन के हर क्षेत्र में जो लोग भारत को आत्मनिर्भर बनाना चाहते हैं उन्हें आगे बढ़कर यह जिम्मेदारी उठानी ही होगी। जैसे ही भारतीयों को उचित अवसर मिला भारतीयों ने अपनी योग्यता वैश्विक स्तर पर प्रमाणित की है।

किसी भी देश में प्राकृतिक संसाधनों का अभाव हो तो उसका आयात बाहर से किया जा सकता है। इसी तरह से आवश्यकता पड़ने पर कुछ थोड़े से विशेषज्ञ भी बाहर से बुलाए जा सकते हैं लेकिन चरित्रवान नागरिकों का आयात नहीं किया जा सकता। चरित्रवान नागरिक का अर्थ है कि देशभक्त, साहसी, पराक्रमी, बलिदानी, धैर्यवान, विनम्र तथा ज्ञानवान, संयमी एवं आत्मबोध से युक्त नागरिक। ऐसे नागरिक ही देश की असली संपत्ति होते हैं। यह सृजन शिक्षा के द्वारा ही संभव होता है। ऐसे नागरिक कहीं आसमान से नहीं टपकते। उनको गढ़ना पड़ता है। यह कार्य केवल देश की ही आवश्यकता नहीं है बल्कि संपूर्ण मनुष्यता और यहाँ तक कि संपूर्ण सृष्टि की भी आवश्यकता है।

भारत एक ज्ञान की सभ्यता और राष्ट्र रहा है। भारतीय ज्ञान की ख्याति संपूर्ण दुनिया में अनादिकाल से रही है। भारत अंग्रेजों के आगमन तक अगर दुनिया का सबसे समृद्ध समाह था तो अपनी शिक्षा के कारण ही। जिस दिन से भारत में विदेशी शिक्षा का फंदा पड़ा उसी दिन से भारत की समृद्धि और सौभाग्य घटने लगा और भारत दुनिया के गरीब देशों मे गिना जाने लगा। ज्ञान के साथ भारत में चारित्रिक पूँजी और श्रेष्ठता का भाव भी सदैव विद्यमान रहा। फाह्यान से लेकर अलबरूनी इत्यादि विदेशी यात्रियों नें भारत के नागरिकों के श्रेष्ठता बोध और जीवन की उत्कृष्टता की विपुल चर्चा की है और प्रमाण दिए हैं।

इस जगह हम शिक्षा में परिवार, शिक्षकों और शैक्षिक संस्थानों की महत्त्वपूर्ण भूमिका देख सकते हैं। अगर एक डॉक्टर, इंजीनियर अथवा ठेकेदार कोई गलती करे तो इस गलती को कुछ समय बाद ठीक किया जा सकता है और उसका प्रभाव थोड़े ही लोगों पर पड़ता है लेकिन एक शिक्षक के कारण कई पीढ़ियाँ नष्ट हो सकती हैं और उस हानि की भरपायी करना संभव ही नहीं।

इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने हमें यह अवसर दिया है कि हम अपनी उस हानि की भरपायी कर सकें जो औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली के जारी रहने से भारत में आज भी हो रही है। पाठ्यक्रम, परीक्षा, मूल्यांकन तथा पाठ्य पुस्तकें इत्यादि इस क्रम में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण है जनमत का बनना और तदनुरूप कार्य। बदलाव शिशु शिक्षा से लेकर शोध तक की संपूर्ण शिक्षा में होना है पर उसका स्वरूप और गति बहुत कुछ हमारी इच्छा शक्ति पर ही निर्भर रहने वाली है। अगर हम यह अवसर चूक गए तो अकल्पनीय हानि होने की संभावना है। इसलिए इस ज्ञानयज्ञ में हमें अपनी भूमिका को पहचानना होगा और तदनुरूप भूमिका निभानी ही होगी। यह कार्य हमारे लिए कोई दूसरा नहीं करेगा। स्वराज की आवश्यकता इसलिए है कि हम स्वधर्म का पालन कर सकें। पराए तंत्र ने हमें आर्थिक रूप से ही गरीब नहीं बनाया बल्कि उसका सबसे बड़ा दोष यह था कि उसने हमें सांस्कृतिक और आध्यात्मिक रूप से विपन्न बना दिया। स्वराज वह बौद्धिक परिवेश है जो हमारे भौतिक अस्तित्व को निर्धारित करता है। आधुनिक भारत के इतिहास को शैक्षिक संस्थानों के इतिहास के रूप में भी पढ़ा जा सकता है। महामना के लिए तो वकालत और राजनीति से ज्यादा महत्त्वपूर्ण काम शिक्षा का था। इसलिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना बौद्धिक स्वराज के विराट स्वप्न का ही साकार रूप है। ❑

भारत पुनर्निर्माण का अनूठा संकल्प : स्वतन्त्रता का अमृत महोत्सव

डॉ. रेनू त्रिपाठी
सहायक आचार्य,
हिन्दी विभाग, सिद्धार्थ
विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर (उ.प्र.)

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयं प्रभा समुज्वला स्वतन्त्रता पुकारती।।
(जयशंकर प्रसाद)

इन पंक्तियों में किसी एक साहित्यकार का ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतवर्ष का अखंड स्वप्न समाया हुआ है। गुलामी की जंजीरों को तोड़कर स्वतंत्रता के सुनहरे दौर को पा लेने की गुहार भारतीय मानस को आंदोलित कर रही थी। साहित्य की परिधि में देखें तो भारतेन्दु से लेकर मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद से लेकर निराला, सुभद्रा कुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर आदि अनेक ऐसे नाम हैं जिनका सम्पूर्ण साहित्य भारतीयता के स्वप्न को जीता दिखाई देता है।

जनता में आत्मगौरव का बोध जगाने और स्वाधीनता के सही मायने समझाने की दिशा में साहित्यकारों ने एक नई चेतना को उभारने का बीड़ा उठाया। वस्तुत: समाज को एक ठोस सांस्कृतिक आधार देने का दायित्व साहित्य ने सदा से निभाया है। प्रसाद के नाटकों में भारतीयता की अनूठी चमक है तो माखनलाल चतुर्वेदी 'पुष्प की अभिलाषा' में गहरे समर्पण को गूँथकर भाव-विह्वल कर देते हैं। वहीं भारतेन्दु जी का समस्त लेखन स्वाधीनता की चिंता से ओत-प्रोत है। निराला की 'तुलसीदास' कविता में भारतीय संस्कृति की अप्रतिम छवियाँ उजागर हुई हैं। वे लिखते हैं -

कल्मषोत्सार कवि के दुर्दम
चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम
वह रुद्ध द्वार का छाया-तम तरने को-
करने को ज्ञानोद्धत प्रहार-
तोड़ने को विषम वज्र-द्वार;
उमड़े, भारत का भ्रम अपार हरने को।

भारतीय चेतना में बिखराव उत्पन्न करने का प्रयास करती परिस्थितियों के विरोध में तुलसी जैसा संत अपनी समूची प्रतिभा के साथ खड़ा होता है और महाप्राण निराला उनके इस संतत्व को भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर के रूप में देखते हैं।

स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव को इन रचनाकारों के स्वप्न से विलग करके देखना स्वाधीनता संघर्ष की बुनियाद से भटकना होगा। एक ओर हमारे स्वतन्त्रता सेनानियों व समाज सुधारकों तो दूसरी ओर इन साहित्यकारों की साधना से लोक के बीच स्वतंत्रता का सपना जीवंत हो रहा था जिसकी सुखद परिणति 15 अगस्त 1947 को होती है। राष्ट्र के स्वातंत्र्य को सर्वस्व मानने वाले इन रचनाकारों ने न केवल भारत की तस्वीर को गढ़ा अपितु उसे सजाया-सँवारा भी।

आज भारत पुनर्निर्माण की दिशा में हमें अपने सांस्कृतिक वैभव की पहचान करते हुए विकास के लक्ष्यों को साधना है। देश की युवा पीढ़ी जो पश्चिमी चकाचौंध में अपनी अस्मिता से दूर छिटक जाने के संकट से गुजर रही है, उसे भारतवर्ष के स्थायी जीवन-मूल्यों से जोड़ना है। विज्ञान, उद्योग, कृषि, साहित्य आदि विविध क्षेत्रों में अपनी सामर्थ्य का परिचय देते हुए ज्ञान की समृद्ध प्राचीन भारतीय परंपरा से विश्व का साक्षात्कार कराना है। ज्ञान-विज्ञान, चिकित्सा की जिन पद्धतियों को हम पश्चिमी देशों की श्रेष्ठता मानते आए हैं, उनके मूल में भारतीय मनीषियों, आचार्यों, आयुर्वेदाचार्यों की लगन और परिश्रम है, उसे प्रत्यक्ष कर एक नए भारत का निर्माण

करने को संकल्पित होना है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल आधार हमारे वेदों में प्रकृति के सभी रूपों को उपास्य मानकर उनके संरक्षण का विधान मानवता की रक्षा के लिए अनिवार्य था। इसकी अवहेलना करते हुए प्रकृति से अनावश्यक छेड़-छाड़ किस कदर पूरे विश्व को आतंकित कर रही है, यह हम सभी के लिए चिंतनीय है। इसलिए आज आवश्यकता है कि हम अपनी जड़ों से जुड़ें। स्वतंत्रता के इन पचहत्तर वर्षों में हमने जो कुछ खोया या पाया है, उस पर आत्म-मंथन करते हुए भारत को संस्कृति, सभ्यता, भाषा, साहित्य के आलोक में देखने का प्रयास करें।

आज पूरा विश्व जिस वैज्ञानिक चिंतन को लेकर प्रगति पथ पर बढ़ रहा है, वह वैज्ञानिक विचारधारा भारतवर्ष की अमूल्य धरोहर है। सी.वी. रमन, हरगोविंद खुराना, होमी जहाँगीर भाभा, सत्येंद्र नाथ बोस, कमला सोहोनी, ई.के. जानकी अम्माल, डॉ. दर्शन रंगनाथन जैसे महान भारतीय वैज्ञानिकों का योगदान भारतीय ज्ञान-विज्ञान को एक नई दिशा देता है जिसे आज विद्यार्थियों को बताए जाने की जरूरत है ताकि वे स्वतंत्रता के इस अमृत महोत्सव को अपने राष्ट्र की भाषा, संस्कृति, कला, विज्ञान के व्यापक परिदृश्य में देख सकें।

विभिन्न संघर्षों के समय में, चाहे वह जीने का संघर्ष हो, सभ्यता का संघर्ष हो अथवा स्वतंत्रता का संघर्ष, भारतीय मानस ने अपनी अदम्य जिजीविषा को बार-बार सिद्ध किया है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा है : मानव की महिमा इस बात में नहीं है कि वह कभी गिरे नहीं, बल्कि इस बात में है कि हर बार वह गिरने पर उठ खड़ा हो। भारत के इतिहास को पलटकर देखें तो अनेक भाषा-संस्कृतियों के आगमन को हमने न केवल स्वीकारा है बल्कि उन्हें भारतीयता के रंग में रँगकर आत्मीयता का अनूठा स्पर्श दिया है। यही कारण है कि भारतीय जन मानस निरन्तर औदार्य, व्यापक दृष्टिकोण और लोकतान्त्रिक मूल्यों के साथ प्रगति के विभिन आयामों को पार कर रहा है।

वर्तमान समय में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं के गौरव को पुनर्स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया है जिसका उद्देश्य हमारी देववाणी व विभिन्न भारतीय भाषाओं में संरक्षित अमूल्य साहित्यिक-सांस्कृतिक परंपरा को सहेजना, उसे देश की वर्तमान और भावी पीढ़ी को हस्तांतरित करना और नए भारत के तरु को फलने-फूलने के लिए उर्वर भूमि प्रदान करना है। वस्तुतः स्वतंत्रता का यह अमृत महोत्सव पचहत्तर सालों की उपलब्धि के बहाने जन मानस के भीतर नए संकल्प का बीज बोना चाहता है और पूरे उल्लास व उमंग के साथ स्वतन्त्रता को महसूस करने का अवसर देना चाहता है। इस महोत्सव का एक विशिष्ट पहलू उन सभी विस्मृत अथवा न पहचाने गए स्वतन्त्रता सेनानियों के प्रति नतमस्तक होना भी है जिन्होंने हमें स्वतंत्रता का यह स्वर्गिक सुख दिया। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में सकारात्मक परिवर्तन लाने वाले महापुरुषों के जीवन-संघर्षों को सामने लाकर युवाओं को कर्तव्यबोध से संपृक्त करने में इस अमृत महोत्सव की सार्थकता है।

आज भारत पुनर्निर्माण की दिशा में हमें अपने सांस्कृतिक वैभव की पहचान करते हुए विकास के लक्ष्यों को साधना है। देश की युवा पीढ़ी जो पश्चिमी चकाचौंध में अपनी अस्मिता से दूर छिटक जाने के संकट से गुजर रही है, उसे भारतवर्ष के स्थायी जीवन-मूल्यों से जोड़ना है। विज्ञान, उद्योग, कृषि, साहित्य आदि विविध क्षेत्रों में अपनी सामर्थ्य का परिचय देते हुए ज्ञान की समृद्ध प्राचीन भारतीय परंपरा से विश्व का साक्षात्कार कराना है।

अतः इन पचहत्तर वर्षों में भारत की विकास-यात्रा का आकलन वस्तुतः उसे एक नयी ऊर्जा से समन्वित करने का उत्तम प्रयास है। राष्ट्र के प्रति हमारी प्रतिबद्धता ने ही स्वतन्त्रता को महोत्सव में बदला है जो पूरे विश्व में सांस्कृतिक दृढ़ता लाने में भारत की अविस्मरणीय भूमिका को प्रत्यक्ष करता है। इतना ही नहीं आज दुनिया में पसर रहे अनाचार और आतंक पर अंकुश लगाने का एकमात्र माध्यम मानवीय मूल्य हैं और इन मूल्यों, यथा- दया, क्षमा, करुणा आदि से पोषित भारतीय संस्कृति निःसन्देह समग्र विश्व को वैचारिक सामर्थ्य से संपृक्त करने में सक्षम है। सही मायने में स्वतन्त्रता का यह अमृत महोत्सव एक आह्वान है जो भारतीयों को भारतीयता के प्रति समर्पण और ईमानदारी के साथ विकास की राह पर बढ़ते रहने को प्रेरित करता है। आज शिक्षा और रोजगार के विभिन्न अवसरों को उपलब्ध कराना, राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय पटल पर भारत की सशक्त पहचान कायम रखना, नए भारत को नयी उजास देने का संकल्प स्वतंत्रता के इस अमृत महोत्सव को सही अर्थ देता है। यह हमारी परम्पराओं का महोत्सव है, हमारी संस्कृति की जीवंतता का महोत्सव है, हमारे स्वप्नों, संघर्षों के पुष्पित-पल्लवित हो उठने का महोत्सव है। ❑

नया भारत, समर्थ और समृद्ध भारत

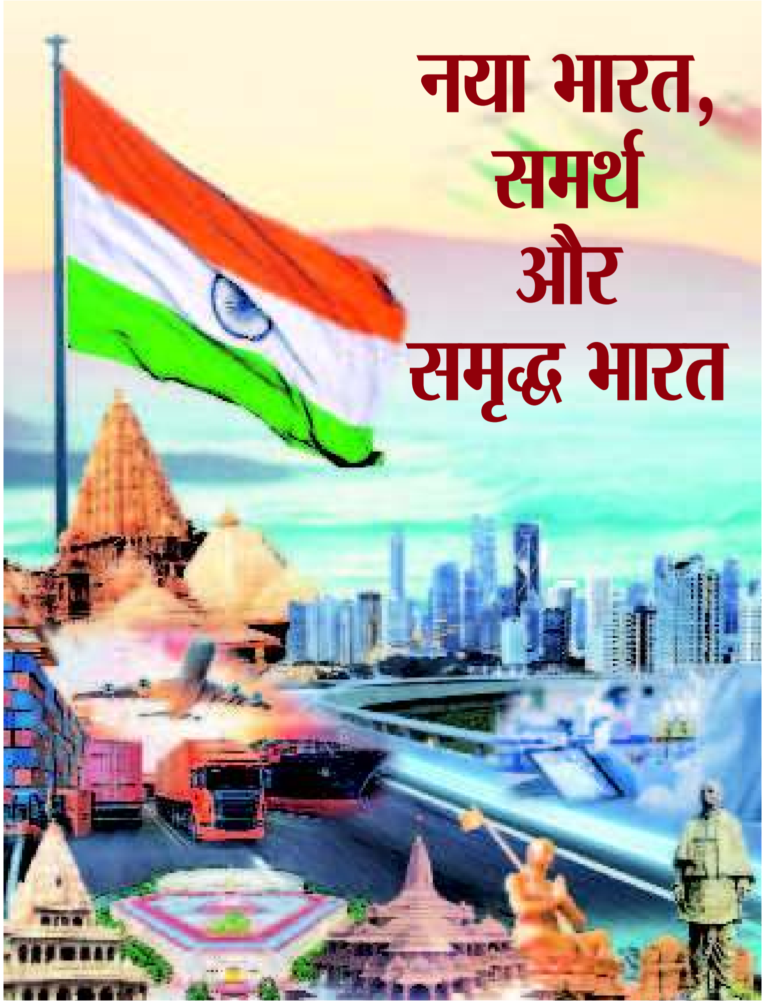

प्रो. दर्शन पांडेय

प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
शिवाजी कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली

विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश भारत के गौरवशाली एवं बहुमुखी प्रतिभासंपन्न प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने जिस नए भारत के निर्माण का सम्बोधन लालकिले की प्राचीर से सन् 2014 में किया था, आज 2022 में जब देखते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि भारत बखूबी उसी राह पर चलकर अपना विकास कर रहा है, जिसका आह्वान मोदी जी ने किया था। 'आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना' ने ही नये भारत को जन्मा है, जो कि 'मेक इन इंडिया' के नारे के साथ पुष्पित-पल्लवित हो रहा है। 'आत्मनिर्भर भारत' रूपी सेतु पर चलकर ही आज 'नया भारत' विकास की सीढ़ियाँ चढ़ रहा है। जिसका प्रमाण आज वैश्विक पटल पर स्पष्ट देखा-सुना जा सकता है। आज भारत समर्थ और समृद्ध राष्ट्र के रूप में पूरे विश्व में अपनी पहचान दर्ज कर रहा है। वास्तव में इस समृद्धि के पीछे भारतवर्ष की हजारों वर्ष पुरानी परंपरा रही है, जिसे अनदेखा करके भारतवर्ष की समृद्धि से परिचित नहीं हुआ जा सकता। भारत सदैव अपनी जड़ों से जुड़ा रहा अर्थात् अपनी परंपराओं को साथ लेकर विकास की ओर अग्रसर हुआ। आज हर दृष्टि से भारत समर्थ और समृद्ध है। फिर चाहे वह तकनीकी क्षेत्र रहा हो या वाणिज्य, कृषि, रक्षा, चिकित्सा, विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में आज भारत ने अपनी एक अलग पहचान बनाई है, जो कि अपने आप में विशिष्टता की द्योतक है।

नया भारत इसलिए नया और समृद्ध भारत है, क्योंकि उसने जो भी विकास किया वह अपनी परंपराओं को साथ लेकर ही किया है। अपनी जड़ों से जो जुड़ाव भारतीय जनमानस का रहा वही उसे विशिष्ट बनाता है। जिस आधुनिक होने की बात को डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा था कि हम आधुनिक इस रूप में हैं कि हमारा एक पैर परंपरा और दूसरा आधुनिकता पर है। इसीलिए तो भारत ऐसा देश है, जो अपनी परंपराओं को साथ संजोए हुए आधुनिकता की सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ पुनः 'विश्व गुरु' बनने की ओर अग्रसर है।

भारत 'वसुधैव कुटुंबकम्' की धारणा को लेकर आगे बढ़ा है। नया भारत सदा सर्वदा से ही ऐसा रहा है कि उसने पूरी वसुधा अर्थात् पूरे विश्व को अपना परिवार माना। जहाँ 'सर्वजन हिताय तथा सर्वजन सुखाय' की अवधारणा को दृष्टिगत रखकर विकास की ओर अग्रसर होने की भावना केंद्रित रही है। कोरोना काल में भारत ने अनेक देशों को दवाइयों तथा जीवन-यापन की मूलभूत वस्तुओं की आपूर्ति इसी भावना को लेकर की है।

भारत आज शिक्षा, तकनीकि, विज्ञान, वाणिज्य, कृषि एवं उद्योग आदि सभी क्षेत्रों में अपने समर्थ और समृद्ध होने का प्रमाण स्वतः ही दे रहा है। विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश भारत का गौरवशाली इतिहास रहा है। बहुमुखी प्रतिभाओं का धनी यह समर्थ और समृद्ध भारत है, जो अपनी स्वतंत्रता के 75 वर्ष पूरे कर 76वें वर्ष में प्रवेश पाकर संपूर्ण

देश में स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव का सिंहनाद कर रहा है। इसमें समस्त देशवासी बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हुए भारत की समृद्धि और सामर्थ्य का परिचय दे रहे हैं। भारत सरकार की अनेकानेक नीतियाँ और रक्षा क्षेत्र की नित नई पहल भारत के समर्थ होने का प्रमाण देती हैं। यह नया भारत इस संदर्भ में नया और समर्थ भारत है कि आज विदेशी नहीं बल्कि स्वदेशी रॉकेट, मिसाइलें, युद्धपोत आदि निर्मित कर रहा है। आज भारत शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभर रहा है। यह केवल रक्षा क्षेत्र तक ही सीमित नहीं बल्कि सभी क्षेत्रों में भारत पहल कर रहा है। नये भारत के निर्माण के लिए समानता, बंधुता सद्भाव एवं सर्व कल्याण की आवश्यकता है। हमारे देश के महापुरुषों, संतों आदि की शिक्षाएँ और उनके संदेश नये भारत को और अधिक समर्थ बनाने में कारगर सिद्ध हो सकते हैं।

किसी भी समाज और देश को सशक्त एवं उन्नत बनने में कोई दो-चार वर्ष नहीं बल्कि दशकों या सदियों का समय लगता है। भारत विविधताओं से भरा हुआ ऐसा देश है, जिसके निर्माण की एक लम्बी परंपरा रही है। भारत का मुकाबला शायद ही विश्व का अन्य कोई देश कर सकेगा। भारत विश्वगुरु और सामर्थ्यवान देश शुरुआत से ही रहा है। भारत की समृद्धिशाली और शौर्य-पराक्रम की परंपरा में विक्रमादित्य, चंद्रगुप्त, अशोक, पोरस, छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप आदि हुए जिन्होंने भगवा परचम को बुलंद किया। रानी लक्ष्मीबाई नये भारत की वीरांगनाओं के लिए एक सशक्त उदाहरण रही हैं। क्योंकि वर्तमान में प्रधानमंत्री जी द्वारा भारत में 'सबका साथ सबका विकास' और 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' और सततविकास की अवधारणा आदि अनेकानेक नई योजनाओं को क्रियान्वित किया गया है। जिससे नये और सशक्त एवं समृद्ध भारत के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं।

नया भारत जिसे 'डिजिटल भारत' की संज्ञा भी दी जाती है। आज संचार और तकनीक का युग है, जिसमें प्रत्येक छोटा सा छोटा कार्य भी चंद मिनटों में पूरा हो जाता है। ऑनलाइन कार्य प्रणाली, ऑनलाइन भुगतान तथा पैसों का लेनदेन डिजिटल रूप में बड़े पैमाने पर हो रहा है। जिससे कालाबाजारी और भ्रष्टाचार पर अंकुश लगा है। इससे भारत की केंद्र एवं राज्य सरकारों को भी अच्छी आमदनी हो रही है। सरकारें जनहित में अनेक लोक कल्याणकारी कार्य रही हैं। केंद्र सरकार द्वारा बहुत तेजी से सड़कों का निर्माण तथा रेल को दुर्गम क्षेत्रों तक पहुँचाने का कार्य भी किया जा रहा है। भारत की आर्थिक विकास दर इस समय दुनिया में सबसे अधिक है। विश्व बैंक का अनुमान है कि भारत की आर्थिक विकास दर जिस गति से आगे बढ़ रही है, उससे भारत जल्द ही विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाला देश बन जाएगा। भारत का निर्यात भी कई गुना बढ़ा है। भारत अनेक संसाधनों में आत्मनिर्भर हुआ है। विश्व व्यापार के केंद्र में भारत एक महाशक्ति के रूप में बहुत तेजी से उभर रहा है। विश्व व्यापार, संचार एवं तकनीकी क्षमता आदि क्षेत्रों में भी अकूत बढ़ोतरी हुई है। रोजगार के अनेक अवसर आज सामान्य जन तक सुलभ हो रहे हैं। इस दृष्टि से लोग आर्थिक व सामाजिक रूप से भी समृद्ध एवं आत्मनिर्भर हो रहे हैं। नि:संदेह 'स्किल इंडिया' और 'आत्मनिर्भर भारत' ऐसे कार्यक्रमों के द्वारा हम अपने आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में पूर्ण रूप से सफल होंगे।

नया भारत इसलिए नया और समृद्ध भारत है, क्योंकि उसने जो भी विकास किया वह अपनी परंपराओं को साथ लेकर ही किया है। अपनी जड़ों से जो जुड़ाव भारतीय जनमानस का रहा वही उसे विशिष्ट बनाता है। जिस आधुनिक होने की बात को डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा था कि हम आधुनिक इस रूप में हैं कि हमारा एक पैर परंपरा और दूसरा आधुनिकता पर है। इसीलिए तो भारत ऐसा देश है, जो अपनी परंपराओं को साथ संजोए हुए आधुनिकता की सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ पुन: 'विश्व गुरु' बनने की ओर अग्रसर है।

वित्त, वाणिज्य, रक्षा आदि के साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी भारत ने उन्नति के अनेक पड़ाव को पार किया है। नई शिक्षा नीति समर्थ और समृद्ध भारत की ओर बढ़ने का एक मजबूत कदम है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का देश में लागू होना स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव का प्रमुख हिस्सा है। क्योंकि नई शिक्षा नीति ही समृद्ध भारत और युवा पीढ़ी को आत्मनिर्भर बनाने तथा संस्कारित करने का आधार है।

नई शिक्षा नीति प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा पर आधारित है। साथ ही इसमें आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, तकनीक एवं नूतन शिक्षण प्रणाली का भी समावेश हुआ है। शिक्षा के साथ-साथ भारत आज विज्ञान के क्षेत्र में भी समृद्ध हो रहा है। राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत अभूतपूर्व उपलब्धियों के साथ आगे बढ़ रहा है। एक उदाहरण मंगल यान है, जिसने भारत की समृद्धि का परचम पहले ही प्रयास में मंगल ग्रह पर पहुँचकर लहराया है। भारत दुनिया का पहला देश है जिसने यह उपलब्धि प्राप्त की है। फलस्वरूप भारत को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी विशेष सम्मान मिला है। इस तरह से सभी क्षेत्रों में उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ भारत आज एक नये समृद्ध और समर्थ भारत के रूप में लक्षित होता है। ❑

भारत की कला संरचनाओं में धर्म

प्रो. आलोक कुमार चक्रवाल
कुलपति,
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय,
बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

भारतीय कला सदैव से ही धर्म अनुप्राणित रही है जिसके साक्ष्य हमें प्रागैतिहासिक काल से ही मिले हैं। प्रागैतिहासिक अनेक स्थलों से हमें मातृका प्रतिमाओं की प्राप्ति हुई है जो प्रकृति की सृजन की शक्ति का पर्याय है। मातृका प्रतिमाओं का अनवरत निर्माण सैंधव काल में होता रहा। सैंधव विविध अवशेषों में पाषाण एवं मृत्तिका निर्मित मातृका प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। साथ ही सैंधव विविध साक्ष्यों से शिव पूजन, वृक्ष पूजन, वृषभ आदि पशु के पूजन की परंपरा का ज्ञान होता है। भारतीय इतिहास में वैदिक कालीन कलात्मक गतिविधियों के विषय में ज्ञान बौद्धिक साहित्यों से होता है। ऋग्वेद में इंद्र, रात्रि, उषा आदि प्रकृति के उपादानों के दैवीय स्वरूप एवं उनके प्रतिमा निर्माण के विषय में उल्लेख मिलते हैं। इसके पश्चात मौर्यकालीन कलात्मक अवशेषों से लोक जीवन में प्रचलित यक्षादि देवों की मान्यताओं के विषय में ज्ञात होता है साथ ही इस काल तक भारतीय उपमहाद्वीप में बौद्ध एवं जैन धर्मों का भी उदय हो चुका था। भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात उनके शरीर धातुओं पर विविध स्तूपों का निर्माण हुआ। इन्हीं स्तूपों पर शुंगकाल में वेदिकाओं एवं तोरण द्वारों का निर्माण हुआ जिसमें भगवान बुद्ध के जीवन की विविध घटनाओं एवं उनके बुद्धत्व को विविध प्रतिमांकनों द्वारा पुनर्जीवित किया गया। ईसा की प्रथम शताब्दी में भारतीय कला के इतिहास में जहाँ अब बुद्ध प्रतिमाओं का निर्माण प्रारंभ हुआ वहीं गुप्त काल में मंदिर स्थापत्यों का निर्माण होने लगा। इन देवालयों के विविध भागों का अलंकरण विभिन्न वैदिक एवं लौकिक देवों के स्वरूपों को उकेर कर किया गया जिसमें शैव, वैष्णव, शाक्त, सौरे, गणपत्य आदि वैदिक देव संप्रदायों के साथ-साथ वैदिकोत्तर बौद्ध एवं जैन देव कुलों का सुंदर समायोजन हुआ है। और इसके पश्चात के कालखंडों में निर्मित देवायतनो में भी इसी परंपरा का निर्वाह दिखाई देता है।

भारतीय उपमहाद्वीप में प्रसरित इस कला धारा का अनुकरण छत्तीसगढ़ क्षेत्र में विकसित कलात्मक संरचनाओं में दिखाई देता है। छत्तीसगढ़ क्षेत्र के कला के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि प्रागैतिहासिक काल से ही इस क्षेत्र में कलात्मक अवशेष ज्ञात हुए हैं। प्रागैतिहासिक शैल कंदराओं में उकेरी गई चित्रकारियाँ प्रागैतिहासिक मानवों के

कलात्मक संज्ञान एवं अभिरुचियों के साक्ष्य हैं एवं इसी क्रम में इस क्षेत्र में प्रतिमा कला का भी विकास हुआ। कालक्रम में लगभग द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से इस क्षेत्र की सर्व प्राचीन प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा वैष्णव प्रतिमा मानी गई है एवं मल्हार (बिलासपुर) से प्रकाश में आई है। मल्हार से ही तृतीय शताब्दी की दो शिव प्रतिमाएँ भी प्रकाश में आई है। 2 बिलासपुर जिले के ही ताला ग्राम में छत्तीसगढ़ के सबसे प्राचीन मंदिर 'जेठानी मंदिर' नामक शिव मंदिर प्रकाश में आया है जो कि वर्तमान में ध्वस्त रूप में ही संरक्षित है। यही निकट देवरानी मंदिर नामक प्राचीन शिव मंदिर भी स्थित है जो कालक्रम में जेठानी मंदिर के पश्चात निर्मित है। 3 जेठानी मंदिर की मलबा सफाई के दौरान ही एक विशिष्ट काल पुरुष प्रतिमा प्रकाश में आई है जिसे विद्वानों ने 'रूद्र शिव' प्रतिमा के रूप में उल्लेखित किया है। संभवत: यह प्रतिमा लोक समुदाय में प्रचलित तंत्र आदि से संबंधित प्रतीत होती है।

छत्तीसगढ़ से प्राप्त प्राचीन मंदिरों में राजिम का विष्णु मंदिर विख्यात है जो छत्तीसगढ़ के स्थानीय नलवंश के शासन काल में निर्मित हुआ है। राजिम की कलाकृतियों में दक्षिण की कला का समायोजन दिखाई देता है। यहाँ से भी ब्राह्मण संप्रदायों सहित बौद्ध एवं जैन

छत्तीसगढ़ के कलावशेषों का ऐतिहासिक अनुशीलन करने पर लोक जीवन में प्रचलित धर्म का स्पष्ट स्वरूप परिलक्षित होता है जिससे ज्ञात होता है, कि यहाँ ब्राह्मण विविध संप्रदायों के साथ-साथ बौद्ध एवं जैन धर्मों को पर्याप्त संरक्षण मिला। जो यहाँ शासन करने वाले स्थानीय राजवंशों के धर्म सहिष्णुता को दर्शाते हैं। साथ ही इस क्षेत्र में इन धर्मों के विस्तार एवं लोकप्रियता को भी सूचित करते हैं।

कलावशेषों की भी प्राप्ति हुई है। राजिम के समानांतर ही सिरपुर में भी मंदिर स्थापत्यों एवं बौद्ध तथा जैन विहारों के निर्माण हुए। सिरपुर का लक्ष्मण मंदिर छत्तीसगढ़ में ईटों से निर्मित मंदिरों में विशिष्ट है। मंदिर के गर्भ गृह में सर्पफणों के नीचे आसनस्थ द्विभुजी विष्णु प्रतिमा विशिष्ट है। सिरपुर से ही विविध शिव मंदिर समूह एवं बौद्ध विहारों की प्राप्ति हुई है। साथ ही यहाँ से जैन विहार के अवशेष एवं तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ भी प्रकाश में आई हैं। सिरपुर में अधिकांश कलाकृतियाँ पांडू वंशीय शासकों के काल में निर्मित हुई हैं। यहाँ से प्राप्त अधिकांश बुद्ध प्रतिमाएँ भूमि स्पर्श मुद्रा में हैं जो छत्तीसगढ़ क्षेत्र में बौद्ध धर्म के महायान शाखा के विस्तार को सूचित करता है। साथ ही बोधिसत्वों एवं बौद्ध देवकुलों से संबंधित प्रतिमाएँ बौद्ध धर्म के अनुयान शाखा के विस्तार को भी दर्शाते हैं।

छत्तीसगढ़ के ऐतिहासिक अनुक्रम में पूर्व मध्यकालीन एवं मध्यकालीन कलात्मक अवशेष नवीं-दसवीं शताब्दी से अनवरत पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी तक प्राप्त होते हैं। यह काल छत्तीसगढ़ में कलचुरी राजवंश का काल था। कलचुरी शासकों ने भी यहाँ ब्राह्मण सहित बौद्ध एवं जैन धर्म को भी राज्याश्रय दिया। कलचुरी कालीन मंदिरों में सर्वप्रथम तुम्माण (बिलासपुर) के शिव मंदिर की गणना होती है। जिसमें कलचुरी कला का प्रारंभिक स्वरूप दिखाई देता है। इसके पश्चात पाली, जांजगीर का विष्णु मंदिर, मल्हार का केदारेश्वर मंदिर, रतनपुर का महामाया मंदिर एवं प्राचीन किले के भग्नावशेष आदि कलचुरी कला की देन हैं। मल्हार में एक स्थानीय संग्रहालय में मल्हार एवं समीपवर्ती क्षेत्रों से प्राप्त कलाकृतियों को संग्रहित किया गया है। जिसमें कलचुरी कालीन, जैन तीर्थंकर प्रतिमाएँ, उमा महेश्वर, रावणानुग्रह, चतुर्भुजी विष्णु प्रतिमा आदि उल्लेखनीय है।

इस प्रकार छत्तीसगढ़ के कलावशेषों का ऐतिहासिक अनुशीलन करने पर लोक जीवन में प्रचलित धर्म का स्पष्ट स्वरूप परिलक्षित होता है जिससे ज्ञात होता है, कि यहाँ ब्राह्मण विविध संप्रदायों के साथ-साथ बौद्ध एवं जैन धर्मों को पर्याप्त संरक्षण मिला। जो यहाँ शासन करने वाले स्थानीय राजवंशों के धर्म सहिष्णुता को दर्शाते हैं। साथ ही इस क्षेत्र में इन धर्मों के विस्तार एवं लोकप्रियता को भी सूचित करते हैं। अत: छत्तीसगढ़ क्षेत्र की कला संरचनाओं द्वारा धर्म का स्वरूप समग्र रूप में मुखरित हुआ है। ❑

Bharat Nirman : Concept and Challenges

Dr. T.S. Girishkumar
Professor of Philosophy (Rtd.)
MSU Baroda (Gujarat)

The present government in the centre had boldly and systematically undertaken the seemingly impossible challenge of Bharat Nirman in a seriously daring manner. Indeed, this Bharat Nirman is actually Bharat PunarNirman, and this has various ingredients inbuilt in it, that can really make the entire task a tough one. But then, tough tasks are undertaken by tough personalities.

Why Bharat PunarNirman?

Let us understand Bharat as a knowledge society, and Bharatiya Sanskriti as a knowledge-based Sanskriti. It shall be interesting to know that knowledge in Bharat is knowledge per say, that is, knowledge of all kinds of things possible and available in the cosmos as such. Acharyas of ancient Bharat had created knowledge upon all available area of the very cosmos, which becomes a vary vast range of knowledge, rather, knowledge about everything. Such knowledge range is from the Vedas to Kamasutra.

It is common notion that culture begins, develops and then declines. This is not the case with Bharat, because Sanskriti is much beyond the concept of culture. Culture is simply 'refined human existence' but Sanskriti is 'refined human existence in tandem with the cosmos itself with a built-in realisation of the transcendental'. Here, existence of Sanskriti shall be epistemologically co-existing with the multiple and plural in an integrated manner. Such epistemologically co-existing with the multiple, plural and the very cosmos itself shall not decline in any natural manner, until, it is externally attacked. Even with all such external attacks, such Sanskriti shall not wither or vanish, they shall remain though latent; but indeed, continuing to be powerful and formidable.

Bharatiya Sanskriti had to undergo thrashing from various invaders right from AD 712 through the Arab invasion of Sindh by the Umayyad military campaigns under Mohammad Bin Qassim. The entire Sindh was converted into Islam, and those who could run away from Sindh remained Hindus mostly in

Punjab. They further had to flee in 1947, when Bharat was cunningly divided on the basis of Islam which is another history. After the Arab conquest of Sindh, there took place many more military invasions upon Bharat, there were all the nasty faces of barbaric attacks including forceful conversions into Islam, abduction of women, loot, destruction and so on. Though the first invader of Bharat was Alexander, son of Phillip of Macedonia, it was less destructive, and the real devastations began with the Muslim invasions. And what began in 712 AD continued till the arrival of the Europeans initially to trade, and subsequently to subjugate.

From 712 AD to 1947 AD, it was a real long period. Normally for Islam, their history is such, that the entire society gets Islamised in no time. Similarly, Christianisation of any society is also rather total. But as mentioned earlier, Bharatiya Sanskriti remained latent, yet powerful, and did manifest as appropriate time arrived, after all those years of insults and humiliation.

Today, we can afford to say that Bharatiya Sanskriti lost nothing significant. We remain still the same, and ever more powerful as well. Fortunately, our history is well written on granites through sculptures and carvings, our knowledge exited through Shruti and Smriti traditions and the Vedopanishadic knowledge tradition continued through Bharatiya Sanskriti. They do exist vividly which is indubitable, but the question is, how many Bharatiyas are given such knowledge and awareness?

The concept of Bharat Nirman

Let us assume that nothing of Bharatiya Sanskriti or of the Vedopanishadic knowledge tradition is lost either through invasions or through time. This is fairly correct also. But the question is, how far and to what extent such aspects are made available to the Nagariks of Bharat? There are still many attacks on our Sanskriti through modern propaganda machines. A required knowledge structure is not yet made available to the Nagariks of Bharat. They are still confused and grouping in dark.

Such works are undertaken by the Rashtriya Swayam Sevak Sangh with excellent performances. As we all know, if we think that we are in better position with Dharma today, it is only due to the activities and sacrifices of Rashtriya Swayam Sevak Sangh. We do have our own government also. Bharat has to be made, undoubtedly.

It should be made possible for all Bharatiyas to know what is Bharat, what is Bharatiya Sanskriti and what is it to be a Nagarik of Baharat. The government is at it, they have a lot to do, they are trying to understand each aspect of our existence to make appropriate corrections. This has to be done on education, and the process of refining education shall be an ongoing one for some time, and we cannot predict for how long this shall go on. Like the social institution of education, there are other social institutions also, and they are also needed to be refined.

Let us not commit a conceptual mistake here, some people want to think that Bharat Nirman is akin to going back in time to the ancient times or days; but such thinking is totally wrong and spurious. Punar Nirman is not going back in time, on the contrary, it shall be re-inventing our ancient Sanskriti through present time and space in our own selves. Further, this shall be a process that had taken place in all times and given differences also in space. In short, Bharat Nirman shall be showing

one, what one really is, and telling one who he really is, and who he really ought to be.

Challenges

The challenges to these are multiple and many. Politically, the opposition constantly politicise everything through contradicting the policies of government, no matter what the government wishes to establish. The political opposition is blind, that they can hardly look into the merits of the case, and as a matter of fact, they do not want to look into any merit or any positive points, they simply want to oppose and contradict whatever the government proposes. It may be the case that the opposition do not want to support good governance simply because they want their supporters to continue supporting them, or they simply fear that they shall loose their significance and existence. So far, this may be looked at as so good, it may be commonly functioning for political existence and the like.

But then, that alone is not the case. Those who oppose goes to nefariously spreading lies and lie propaganda to any extent to tarnish the government in many cases. They are found infuriating common people through the sentiments of religion, caste, regionalism etc. – all of them eventually amounting to separatism and disintegrating the unity of Bharat. Such instances in today's Bharat are plenty, be it ShaheenBaug agitation against the CAA, or be it the farmers agitation and the like. The point is, that, they are able to find space and time for such lie based artificially erected issues, and they are able to gather sufficient funds from enemies of Bharat not only to run their show, but also to make savings for themselves.

On the other hand, Hindu Dharma does advocate secularism in a natural manner through concepts like 'Vasudhaiva kutumbakam' and the like, apart from 'Ekam sadvipra bahudhavadanti'. Bharat is united through Bharatiya Sanskriti, and the Hindu Dharma had been preserving Bharatiya Sanskriti and the Vedopanishadic knowledge tradition and transmitting it from generations to generations. Perhaps this may act as a panacea for all hurdles to move from India to Bharat, which shall be Bharat Nirman.

This indeed, is a serious situation. Those who get funds, those who get time and space, those who create definite agenda and those who do not want to see beyond their noses, those who just keep loving their own comfort zones irrespective of anything happening to anyone and anywhere just want to keep maintaining their own comfort zones from good to better and better, are a real problem of hindrance to any good step in the present situation and conditions.

In the world's largest and most meaningful democracy of Bharat, such people really shall go on with their fetishisms to any extent and to all kinds of actions. In our experience, we find that their most powerful weapon is anti-Hindu attitude in general and creating caste divisive antagonism in particular, apart from creating regional differences.

It appears that it is really very difficult to counter such massive destructive phenomena which is trying to destroy the one-ness of Bharat. But this can well be destroyed to very good extent. I would suggest that, somewhere in appropriate time in future, Bharat should be declared a Hindu Rashtra. Making Bharat Hindu Rashtra can at once solve all these problems to a very good extent. All arguments against Hindutva could systematically be demonstrated as spurious from the very functioning itself. Hindu need not be secular, as secularism is built into the very concept of Hindutva by default. Secularism is essentially a European concept, which is actually synthetic and artificial. It is artificial for the Europeans because none of their religions advocate secularism. On the other hand, Hindu Dharma does advocate secularism in a natural manner through concepts like 'Vasudhaiva kutumbakam' and the like, apart from 'Ekam sadvipra bahudhavadanti'. Bharat is united through Bharatiya Sanskriti, and the Hindu Dharma had been preserving Bharatiya Sanskriti and the Vedopanishadic knowledge tradition and transmitting it from generations to generations. Perhaps this may act as a panacea for all hurdles to move from India to Bharat, which shall be Bharat Nirman. ❑

Decolonization of India : A Perspective from the Classical Philosophical Schools

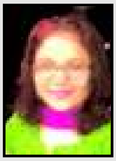

Dr. Sindhu Poudyal
Department of Philosophy
Tripura University

The civilization of India i.e.Bhâratis considered to be one of the oldest civilizationsthat existed and evolved continually among the living traditions of the world. One of the striking features of this civilization is that it continually evolved with all its rise and falls still maintained to survive amidst warfare and one of the longest colonized countries. Hence, at this juncture of this dawn of new horizons for India, we need to look back and ponder along with the wonder of its substance, what those striking features led to the retainment of the soul of Bhâratiyata in Bhârat. In this paper, I sought to highlight one of two such features which could let to the evolving as well as retainment of the chentanâ of Bhâratiyata and what went off track for which even after independence, we could not come out of the colonial zeal completely, especially within the domains of theorizing the tradition.

Indian knowledge tradition equated 'knowledge with being' and 'being with liberation'. Though this statement sounds very lame in utterance, it is profoundly meaningful in the context of every human being born in this culture. As human existence in the world is driven by a purpose and that purpose is to find ethical meaning while living and destined towards liberation which essentially means breaking the cycle of birth and death. Though there are three paths to liberation directed by the sacred scriptures; all the nine major philosophical traditions of India accepted knowledge as one of the essences of human existence in the world. Hence, even the nâstika schools like Cârvaka - who do not believe in the Vedas as the supreme authority nor believe in any kind of life after death also

believe that knowledge can be acquired from perception and to know is one of the essences of being human. In the same tradition of nâstikaschool of thought, we have Buddha and Jaina philosophies who may not believe Vedas to be the supreme authority when it comes to the derivation of the eternal knowledge tradition, but the essence of Budhha and Jaina philosophy lies in the fact that leading an ethical life is essential not only for the person to live this life alone but for the afterlife too. Hence even though Buddha and Jaina traditions did not accept the supreme philosophies of the Vedas but still highlighted the necessity of the meaning of being human and the role of knowledge in acquiring the highest knowledge. Buddha goes on to elaborate that the meaning of human existence is to get rid of Suffering which every human being faces in life but for the cessation of suffering

The aim was not to serve only one or some but the whole of the cosmos – Vasudhaiva Kutumbakam. If India could do it in the past, it may do it again in future too. The first attempt I through this paper wish to propose is the revival of the past knowledge tradition and methods so that gradually India retains that lost tower of the civilizational constitution. For instance, the classical philosophy of Yoga has been revived but not as the method and aim with which Maharshi Patanjali perhaps envisioned.

Buddha taught that at the root of it there is 'not knowledge' which he terms as avidyâ. The one who acquires knowledge and is seated in that knowledge becomes ethical and will eventually achieve Nirvâna. Likewise, all other six orthodox schools of thought too gave importance to various means 'to know' as one of the essential features of human existence in the world. The whole of the Indian knowledge tradition culminates in knowledge to the level that knowledge has been equated with liberation. Here I would like to bring the Advaita tradition which states – 'to know is to approach and seated in that knowledge and become a stheetaprajña. Hence, the common meaning that liberation is to reach somewhere, has been nullified by the Advaita tradition as well as in Bhagavad Gitâ. Bhagavad Gita which can be seen as the summary of all the classical Indian traditions summarizes the essence of knowledge to know why human life is meaningful in this world and why it is only for the human that liberation to matters. Now, the whole of this I see as a departure point why Indian philosophy

was considered as unique in its own way across the globe by the visitors who travelled to India for acquiring knowledge which this tradition has to offer to anyone who seeks 'to know'. One of the reasons why this trend declined in the past was those knowledge traditions are no longer popular or those popular and accessible methods are considered either as too spiritual to the extent that some of them were considered mysterious and fall under spiritualism. Most of those techniques of knowledge are considered criminal too to give an example 'tantra sadhana'.

Now let us see what were the reasons why India even after throwing away the colonial rule politically, could not mitigate much in the development of knowledge tradition and at the socio-cultural front. Of course, we all accept the fact that we cannot go back in time and change everything but one of the major challenges which our generation is facing now is the gap of unfulfilled information. Available primary sources are considered either mythical or distorted with overlapping colonial narratives. Because of this whatever available data we gather there seems to be a trace of suspicion that always accompanies the narrative. Because of this, we at present become clueless about which way to take a genealogical perspective or otherwise.

Another significant aspect of the whole of decolonization of the tradition has a lot to do with the specific aim of the tradition. And this tradition is cherished to preserve its knowledge from time immemorial for the whole of humanity across the globe. When the rest of the world was trying to figure out the ways to survive in the world, Bharat had shown not merely survival but surviving meaningfully and ethically while alive so that when one leaves his/her absence was considered a means to become a knowledge tradition itself. Hence, India neither thought of the need of having any copyright, nor any script to preserve and write the text. The system of knowledge was confined to existence itself with the optimum usage of faculties of understanding - sravana, manana andniddhiyâsana.

Hence when we think of decolonization, I prefer to revive the lost knowledge tradition of this land which had only one aim to serve the Vasudha and show the way which is the right way and is the only way. The aim was not to serve only one or some but the whole of the cosmos – Vasudhaiva Kutumbakam. If India could do it in the past, it may do it again in future too. The first attempt I through this paper wish to propose is the revival of the past knowledge tradition and methods so that gradually India retains that lost tower of the civilizational constitution. For instance, the classical philosophy of Yoga has been revived but not as the method and aim with which Maharshi Patanjali perhaps envisioned. Though this revival has had a tremendous impact from which the whole world is getting benefitted now and recognising it by giving it a name and platform across the globe. Likewise, there are several philosophies and methods which are yet to revive and this I believe is the only way to remain original and unique and will also decolonize every Indian culturally. ❑

In Achieving Aims of Swaraj @ 75

Ramakrishna Rao
All India President,
Vidya Bharathi

75 years of independence is a big moment for India to educate the people of Bharat about its glorious past and struggle for freedom with all unparallel contributions from our past masters. It is not out of context to mention how almost four generations of our country are quite ignorant of freedom movement in real spirit. Now that it is our bounden duty to revisit the history of foreign and colonial rule highlighting the sacrifices of our forefathers. There is a huge gap in our history because of the selective approach of the then historians. We are left with no option than to read the distorted, uninspiring and un-factual history, even after our swaraj @ 75.

History to inspire youth

It is also the genuine cause to motivate the current generation along with correcting the history, which is misrepresented, manipulated and undermined the untiring efforts of Indians by just sidelining the nationalist perspective. Un-sung, un-noticed and un-identified innumerable heroes – who martyred themselves for securing safe independent Bharath – are to be remembered and introduced to the youth to make them more accountable, answerable and responsible.

Euro centric curriculum

Western mindset historians attempted further to distort our history by deleting the golden glorious past from the school and college history text books. It is clear attempt to delink the youth from our culture and their heroes. The curriculum, syllabus, text books etc. were designed to ignore indo-centric approach and making it more euro-centric.

Our Approach

Now instead of a simple change, reform or modification we need summary transformation of Indian education eco system. First, we have to build proper education policy based on Bharatiya philosophical and psychological foundations of education which are more scientific, rational and time tested. No nation in the world brought an education policy by ignoring its national identity, traditions, ethos and goals. This is only the answer to take on the colonial and western mindset, which tried to find out short term solutions based on western experience, which is thoroughly failed in enthusing the national spirit.

Ancient quality education fabric destroyed

Education was a man making endeavour focussing on each and every individual. In India it was considered as constructive and artistic process rather than mechanical and destructive one. Dr. A.S. Altekar, an eminent historian from Banaras Hindu University, in his study noted that infusion of piety, formation of character, personality development, inculcation of civic and social duties, promotion of social harmony and the preservation and spread of national culture were the aims of ancient education. It was never forgotten that the aim is to create human capital with a value base by taking pride in India.

For Nationalist Education

The leaders of the nationalist movement were quite resistant to colonial education and anglicising the education. They even debated and discussed across the country the ill effects and promoted national educational institutions across the country. The pioneer of the nationalist education movement was Rajnarayana Basu (maternal grandfather of Aurobindo Ghosh) and Devendranath Tagore (father of Ravindranath Tagore), who started Rashtreeya Samskruthi Prasarana Sabha in Bengal and mustered support across the country. Bala Gangadhar Tilak, Lala Lajpat Rai and Aurobindo Ghosh extended support. Many savants like Vivekananda, Niveditha, Dayananda Saraswathi, Abdul Kalam Azad, Mahatma Gandhi, Maliviya, vinoba Bhave, Kaka Kalelkar, Guruji and innumerable freedom fighters also joined the movement. The aim was to secure India-centric national education to the people without their getting uprooted from our great culture. Tagore's Shantiniketan (general), Sriniketan (rural) and Viswabharathi (higher education) and Mahatma Gandhiji's basic education experiment of Gujarat Vidyapeeth and many such activities followed across the country.

At this juncture new National Education Policy came out with a thurst on Sarvangeena Vikas (all round development) and Samagra Siksha (Holistic development). Along with these man making initiatives and building competences, vocational education, multi-linguism, appreciating our common cultural heritage, Indian knowledge system, digital education, social and national consciousness are on topmost priority.

Why national policy after independence?

Since education forms one of the core components of the programme of national reconstruction, since the colonialisation had lead to intrusion of western institution. Inspite of better efforts of the leaders of national movement, in the post-independent India, the end of colonial rule did not impact much change in the system. Thus, the University Education Commission (Radhakrishnan Commission, 1948-49), the Secondary Education Commission (Mudaliar commission, 1952-53) and later a comprehensive review of education system by Education Commission (Kothari Commission, 1964-65), were to

essentially keep the system intact with minor course corrections rather than efforts to righting a faulted system. Hence right-thinking educationists thought that National Policy on Education was necessary whose cardinal principle is to consider education as an unique investment for the present with assured dividends for the future, and the natural choice was to indianise or nationalize the education.

Gist of NEPs till now

Apart from universalisation of education, providing quality teachers, stress on moral education, sense of social responsibility, introduction of work experience, encouraging Science education and research, vocationalisation of secondary education, three language formula along with encouraging Sanskrit language are important policy recommendations of 1968.

A common educational structure and national curriculum frame work with a common core. Appreciating India's common cultural heritage protection of environment, removal of social barriers and inculcation of scientific temper are the salient features. An important outcome of this exercise was the 42nd constitutional amendment in 1976, which moved education to the concurrent list and consequently sharing of responsibilities between the Central and State governments A child centered approach in education was stressed upon in 1986 and revised policy of 1992.

Deviating a little from the past and the same ideals being repeated but in the changed context as per NEP 2005. The government reviewed different policies of education through National Knowledge Commission in 2006 and Yashpal committee report 2009, but with not much desired results.

Challenges in education

Even after 75 years of freedom, Indianisation of education remains a nightmare. Bharateeya philosophical, psychological and sociological and cultural foundations of education are still missing in the present setup. Everybody has been feeling that the system is faulty and the outcome is unsatisfactory but the leaders are scarcely willing to accept challenges. The biggest challenge is to prepare a 'NATIONAL MAN' for modifying our nation into a 'MANLY NATION'.

NEP-20 and Swaraj-75

At this juncture new National Education Policy came out with a thurst on Sarvangeena Vikas (all round development) and Samagra Siksha (Holistic development). Along with these man making initiatives and building competences, vocational education, multi-linguism, appreciating our common cultural heritage, Indian knowledge system, digital education, social and national consciousness are on topmost priority. It is aimed to meet future challenges through present experimentation and past experience. These path breaking initiatives are the need of the hour where our productive population stands more than 60%. Swaraj at 75 shall have its goals achieved through this NEP-20.

Conclusion

As responsible citizens, it is our duty to help the government with all our might to achieve these goals through implementation initiatives. Without big participation of people this NEP-20 would fail to achieve its objectives. ❑

स्वराज 75 : शिक्षा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 से अपेक्षाएँ

प्रो. राजीव सक्सैना

प्रोफेसर, आर्थिक प्रशासन और वित्तीय प्रबंध विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में 2020 में आई राष्ट्रीय शिक्षा नीति वस्तुत: तीसरी शिक्षा नीति है। स्वतन्त्रता के बाद शिक्षा व्यवस्था में सुधार हेतु अनेक आयोग बने जिसमें कोठारी आयोग (1964-1966) प्रमुख है। फलस्वरूप भारत की प्रथम शिक्षा नीति 1962 में आई उसके पश्चात् 1986 में तथा अब वर्तमान सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की घोषणा की है व देश में विधिवत इसे लागू करने का प्रयास कर रही है।

यूं तो सभी शिक्षा नीतियों में मूलभूत बातें तो अच्छी ही थी परन्तु सदियों की गुलामी के कारण वे शिक्षा नीतियाँ भारत के स्वत्व को जगाने में कामयाब नहीं हो पायी उसके ऐतिहासिक कारण भी हैं।

शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि शिक्षा के क्षेत्र में, भारत की प्राचीन ज्ञान परम्परा को बदनाम और खारिज किया गया, जैसा कि जैम्स मिल द्वारा लिखित पुस्तक 'ब्रिटिश भारत का इतिहास' में उन्होंने लिखा कि एक विधिवत योग्य व्यक्ति एक वर्ष में अपने छोटे से कक्ष के भीतर रहकर भारत के विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। बनिस्पत इसके कि वह अपनी आँख, कान, नाक खुली रखकर भारत में लम्बा समय व्यतीत करे। तथापि मिल ने इस प्रस्तावना के सन्दर्भ में यह कहा कि उनका यह कार्य एक 'महत्त्वपूर्ण इतिहास' है, जिसमें हिन्दू रीति-रिवाजों तथा एक पिछड़ी संस्कृति पर एक कठोर प्रहार है, जो कि उसकी दृष्टि में केवल अंधविश्वास, अज्ञानता और महिलाओं के प्रति दुर्व्यवहार के लिए ही उल्लेखनीय है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में और उसके बाद ब्रिटिश शासनकाल के समय में अंग्रेज शासकों के मन में चल रहे दो उद्देश्य प्रतीत होते हैं पहला, इस भूमि की सम्पत्ति को लूटना और दूसरा यहाँ के मूल निवासियों को उनकी शिक्षा व्यवस्था व जड़ों से काटकर उनके जैसे (अंग्रेज) बनाने को प्रोत्साहित करना।

हम देखते हैं कि अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने एवं भारतीयों में हीन भावना भरने के लिए उन्होंने इतनी चालाकी से अपनी चालें चली कि आज आज़ादी के पचहत्तर साल बाद भी हमारे युवा उनकी भाषा व उनके परिधान पहनकर अपने को गौरवान्वित महसूस करते हैं। पूरे देश में बड़ी चतुराई से व्याप्त एक सम्मोहन से अपने को बाहर निकालने में असमर्थ हैं।

किसी भी देश को बदलना है तो उसकी शिक्षा नीति को बदलो और ऐसा ही लार्ड मैकाले द्वारा प्रतिपादित शिक्षा नीति का उद्देश्य था उसने अंग्रेजी भाषा में शिक्षा नीति को ऐसे लागू किया कि भारत के बुद्धिजीवी लोग अपनी मूल भाषा संस्कृत और फिर हिंदी से कट गये जिसमें कि भारत का पूरा ज्ञान-विज्ञान, अध्यात्म सभी कुछ था। किसी भी शिक्षा-नीति का इतना गहरा असर होता है कि आज 100-125 वर्षों के पश्चात् हमारा पूरा समाज यहाँ के

संभ्रांत लोग अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा दिलवाने की होड़ में लगे हुए हैं और अपनी भाषा हिंदी और संस्कृत को तिरस्कार या हीन भावना से ग्रसित होकर देखते हैं। मेकाले ने कहा था कि शक्ल सूरत में तो यहाँ के लोग भारतीय दिखेंगे लेकिन उनका मस्तिष्क पूरी तरह अंग्रेजियत की तरह हो जायेगा। लेकिन फिर भी भारत की संस्कृति की जड़ें इतनी गहरी हैं कि अनेक बाधाओं के बाद भी हमारे शास्त्रों में वर्णित योग और आयुर्वेद को पूरा विश्व जानने और अपनाने पर आतुर है।

1820 तक अंग्रेजों ने हमारी शैक्षिक प्रणाली का समर्थन करने वाले वित्तीय संसाधनों को पहले से ही नष्ट कर दिया था। इस कार्य को वह गत 200 वर्षों से कर रहे थे किन्तु फिर भी भारतीय अपनी शिक्षा प्रणाली की विशिष्टताओं को बनाये रखने में समर्थ रहे। अंग्रेजों ने इस भारतीय शिक्षा प्रणाली की सूक्ष्मताओं का पता लगाने के लिए प्रयास करने का निर्णय किया, फलस्वरूप, 1822 में एक सर्वेक्षण का आदेश दिया गया, जिसे अंग्रेज कलेक्टरों द्वारा संचालित किया गया। इस सर्वेक्षण में पाया गया कि बंगाल प्रेसीडेंसी में गाँवों में एक लाख स्कूल थे, मद्रास में एक भी गाँव ऐसा नहीं था जहाँ स्कूल न हो, मुम्बई में यदि गाँव की संख्या 100 के लगभग थी वहाँ एक स्कूल अवश्य था। इन विद्यालयों में सभी जातियों के शिक्षक व विद्यार्थी थे। किसी भी जिले में शिक्षकों में 68 प्रतिशत शिक्षक ब्राह्मण व कायस्थ जाति के थे तथा शेष शिक्षक अन्य जातियों से थे, सभी बच्चों की शिक्षा उनकी मातृभाषा में ही होती थी। अंग्रेजों ने अपनी शिक्षा व्यवस्था से भारतीयों को शिक्षित करने में दिलचस्पी दिखाई, क्योंकि भारतीयों को शिक्षित करके उन्हें कम मजदूरी पर अंग्रेजियत सीख शिक्षित कामगार मिल सकते थे। इस रणनीति के साथ उन्होंने 1857 में कोलकत्ता, मद्रास तथा मुम्बई में विश्वविद्यालय स्थापित किये तथा अंग्रेजी माध्यम के स्कूल और कॉलेज भी धीरे-धीरे खोले जा रहे थे। इन अंग्रेजी माध्यम के संस्थानों में भारत के कुलीन समाज ने गहरी दिलचस्पी दिखाई और जो आज तक जारी है।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् अनेक शिक्षा आयोग मुदलियार आयोग कोठारी आयोग, सैम पित्रोदा के नेतृत्व में बने और सभी ने शिक्षा नीति में परिवर्तन के लिए अपने सुझाव भी दिए और उसी के आधार पर भारत में दो शिक्षा नीतियाँ बनी परन्तु कोई भी नीति भारतीयता को तथा भारतीय जीवन मूल्यों को बढ़ाने में कारगर नहीं हो पायी। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 अंतरिक्ष वैज्ञानिक के. कस्तूरी रंगन जी की अध्यक्षता वाली समिति की रिपोर्ट पर आधारित है जिसके तहत वर्ष 2030 तक संकल नामांकन अनुपात को 100 प्रतिशत लाने का लक्ष्य रखा गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्तर्गत केन्द्र व राज्य सरकारों के सहयोग से शिक्षा क्षेत्र पर जीडीपी का 6 प्रतिशत सार्वजनिक व्यय का लक्ष्य रखा गया है। नई शिक्षा नीति की घोषणा के साथ ही मानव संसाधन प्रबन्ध मंत्रालय का नाम शिक्षा मंत्रालय कर दिया गया है। वैसे तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रारूप का हममें से लगभग सभी ने अध्ययन किया होगा परन्तु राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 बुनियादी रूप से बहुत अलग है जिसमें मानवीय मूल्यों, भारतीयता तथा भारतीय भाषाओं और व्यक्तिगत कौशल को बढ़ाने पर विशेष जोर दिया गया है जो प्रमुखतया निम्न प्रकार है -

अभी तक की शिक्षा नीतियों में 10+1+3, 10+2+3 अर्थात् कक्षा 10 से मूलरूप से शिक्षा पर ध्यान दिया जाता था पहली बार 5+3+3+4 अर्थात् कक्षा 5 तक पर विशेष ध्यान देने पर बल दिया गया है नीति का स्पष्ट मानना है कि यदि बच्चे का प्राथमिक अध्ययन सुदृढ़ होगा तभी एक अच्छी नींव के साथ बच्चे का सर्वांगीण विकास हो पायेगा और और साथ ही कक्षा 5 तक शिक्षा 3 साल की प्री-प्रायमरी स्कूल और ग्रेड 1 व 2 की शिक्षा मातृभाषा में ही हो इस पर जोर दिया गया है ताकि बच्चों की अपनी भाषा में एक सही व अच्छी समझ विकसित होगी व उसकी नींव अच्छे ढँग से रखी जायेगी।

इस शिक्षा नीति की एक सबसे प्रमुख बात व्यावसायिक शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित करना है। कक्षा 6 से एक विषय व्यावसायिक शिक्षा का पढ़ाया जायेगा जो कि बच्चे के कौशल (skill) को विकसित करेगा मेरा मानना है कि इस अवधि में नैतिक, शारीरिक शिक्षा के साथ कौशल विकसित करने हेतु कक्षा 6, 7, 8 तथा 9, 10 और 11 के पढ़ते-पढ़ते बच्चे अपने कौशल skill में भी साथ-साथ पारंगत हो जायेंगे। अर्थात् व्यवसाय की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनने की उसकी तैयारी हो जायेगी। व्यावसायिक शिक्षा में कक्षा 6 से उसे व्यावसायिक पाठ्यक्रम को एक विषय के रूप में अध्ययन करना होगा मेरा मानना है कि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का निर्धारण ऐसा होना चाहिए कि जो उसे रोजगार के लिए आत्मनिर्भर बनने की ओर अग्रसर कर सके। व्यावसायिक पाठ्यक्रम में हमें वर्तमान की आवश्यकता के हिसाब से विषयों का पाठ्यक्रमों का चयन करना पड़ेगा। उदाहरण के लिए - कम्प्यूटर निर्माण, मरम्मत आदि, मोबाइल फोन निर्माण व मरम्मत, विद्युत उपकरण निर्माण व मरम्मत, अन्य विद्युत सम्बन्धी कार्य कारपेन्टर, फर्नीचर निर्माण उद्योग से सम्बन्धित निर्माण व मरम्मत ओटोमोबाईल (कार स्कूटर व अन्य वाहन) निर्माण, मरम्मत उद्योग मेसेन कार्य (भवन निर्माण से सम्बन्धित कार्य), हास्पीटलिटी पर्यटन उद्योग, कुक, शेफ, गाइड से सम्बन्धित कार्य, वस्त्र निर्माण, टेलरिंग से सम्बन्धित कार्य, रेफ्रिजरेटर, एसी., वाशिंग मशीन तथा अन्य इलेक्ट्रोनिक उत्पाद से सम्बन्धित कार्य, कृषि तथा कृषि उपकरणों से सम्बन्धित कार्य, इसके अतिरिक्त भी रोजमर्रा के जीवन में काम आने वाले काम-धन्धों से सम्बन्धित कार्यों का कक्षा

6 से 11 तक पाठ्यक्रम निर्माण, उनका प्रशिक्षण, इस तरह बनाना कि कक्षा 11 के बाद जब एक छात्र विद्यालय से निकले तो वह अपने द्वारा चयनित व्यावसायिक विषय में पूर्णतया निपुण होकर निकले तथा अपना काम धन्धा करने की स्थिति हो ताकि भारतीय विद्यार्थी आत्मनिर्भर बन सके।

उच्च शिक्षा में भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में बहुत सी ऐसी बातों का समावेश किया गया है जो कि नीति के अन्य गत-नीतियों से अलग बनाती है। NEP-2020 के तहत उच्च शिक्षण संस्थानों में सकल नामांकन अनुपात को 26.3 प्रतिशत (2018 में) से बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक करने का लक्ष्य है इसके साथ ही देश के उच्च शिक्षण संस्थानों में 3.5 करोड़ नई सीटों का सृजन करना।

NEP-2020 के तहत स्नातक पाठ्यक्रम में मल्टीपल एंट्री तथा एक्जिट व्यवस्था को अपनाया गया है। इसके तहत 3 या 4 वर्ष स्नातक पाठ्यक्रम में छात्रों को कई स्तर पर पाठ्यक्रम को छोड़ सकेंगे तथा बाद में जुड़ भी सकेंगे। छात्रों को उसी अनुरूप डिग्री या प्रमाण पत्र दिया जायेगा (1 वर्ष बाद प्रमाण-पत्र, दो वर्ष पूरा करने पर एडवांस डिप्लोमा, 3 वर्ष बाद स्नातक तथा चार वर्ष बाद शोध के साथ स्नातक। विभिन्न उच्च शिक्षण संस्थानों से प्राप्त अंकों या क्रेडिट को डिजिटल रूप से सुरक्षित रखने के लिए एक एकेडेमिक बैंक ऑफ क्रेडिट स्थापित होगा ताकि अलग-अलग संस्थानों में छात्रों के प्रदर्शन के आधार पर उन्हें डिग्री प्रदान की जा सके।

भारतीय उच्च शिक्षा आयोग

नई शिक्षा नीति (NEP) में देश भर के उच्च शिक्षा संस्थानों के लिए एक एकल नियामक अर्थात् भारतीय उच्च शिक्षा परिषद् (Higher Education Council of India (HECI) की परिकल्पना की गई है जिसमें विभिन्न भूमिकाओं को पूरा करने हेतु कई कार्यक्षेत्र होंगे। भारतीय उच्च शिक्षा आयोग चिकित्सा एवं कानूनी शिक्षा को छोड़कर पूरे उच्च शिक्षा क्षेत्र के लिए एक एकल निकाय (Single Umbrella Body) के रूप में कार्य करेगा।

HECI के कार्यों के प्रभावी निष्पादन हेतु चार निकाय-

राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा नियामकीय परिषद (National Higher Education Regulatroy Council & NHERC) : यह शिक्षक शिक्षा सहित उच्च शिक्षा क्षेत्र के लिये एक नियामक का कार्य करेगा।

सामान्य शिक्षा परिषद (General Education Council & GEC) : यह उच्च शिक्षा कार्यक्रमों के लिए अपेक्षित सीखने के परिणामों का ढाँचा तैयार करेगा अर्थात् उनके मानक निर्धारण का कार्य करेगा।

राष्ट्रीय प्रत्यायन परिषद (National Accreditation Council NAC) : यह संस्थानों के प्रत्यायन का कार्य करेगा जो मुख्य रूप से बुनियादी मानदंडों, सार्वजनिक स्व-प्रकटीकरण, सुशासन और परिणामों पर आधारित होगा।

भारत में आजादी के पश्चात् अनेक शिक्षा आयोग मुदलियार आयोग कोठारी आयोग, सैम पित्रोदा के नेतृत्व में बने और सभी ने शिक्षा नीति में परिवर्तन के लिए अपने सुझाव भी दिए और उसी के आधार पर भारत में दो शिक्षा नीतियाँ बनी परन्तु कोई भी नीति भारतीयता को तथा भारतीय जीवन मूल्यों को बढ़ाने में कारगर नहीं हो पायी। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 अंतरिक्ष वैज्ञानिक के. कस्तूरी रंगन जी की अध्यक्षा वारली समिति की रिपोर्ट पर अराधारित है जिसके तहत वर्ष 2030 तक संकल नामांकन अनुपात को 100 प्रतिशत लाने का लक्ष्य रखा गया है।

उच्चतर शिक्षा अनुदान परिषद् (Higher Education Grants Council & HGFC): यह निकाय कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के लिए वित्तपोषण का कार्य करेगा।

गौरतलब है कि वर्तमान में उच्च शिक्षा निकायों का विनियमन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी), अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (एआईसीटीई) और राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एनसीटीई) जैसे निकायों के माध्यम से किया जाता है।

देश में आईआईटी और आईआईएम के समकक्ष वैश्विक मानकों के 'बहुविषयक शिक्षा एवं अनुसंधान विश्वविद्यालय' (Multidisciplinary Education and Reserach Universities & MERU) की स्थापना की जाएगी।

विकलांग बच्चों हेतु प्रावधान

इस नई नीति में विकलांग बच्चों के लिए क्रास विकलांगता प्रशिक्षण, संसाधन केंद्र, आवास, सहायक उपकरण, उपर्युक्त प्रौद्योगिकी आधारित उपकरण, शिक्षकों का पूर्ण समर्थन एवं प्रारंभिक से लेकर उच्च शिक्षा तक नियमित रूप से स्कूली शिक्षा प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित करना आदि प्रक्रियाओं को सक्षम बनाया जाएगा।

डिजिटल शिक्षा से संबंधित प्रावधान

एक स्वायत्त निकाय के रूप में 'राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच' (National Educational Technology Forum) का गठन किया जाएगा जिसके द्वारा शिक्षण, मूल्यांकन योजना एवं प्रशासन में अभिवृद्धि हेतु विचारों का आदान-प्रदान किया जा सकेगा। डिजिटल शिक्षा संसाधनों को विकसित करने के लिए अलग प्रौद्योगिकी इकाई का विकास किया जाएगा जो डिजिटल बुनियादी ढाँचे, सामग्री और क्षमता निर्माण हेतु समन्वयन का कार्य करेगी।

पारंपरिक ज्ञान–संबंधी प्रावधान भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ, जिनमें जनजातीय एवं स्वदेशी ज्ञान शामिल होंगे, को पाठ्यक्रम में सटीक एवं वैज्ञानिक तरीके से शामिल किया जाएगा।

विशेष बिंदु –

आकांक्षी जिले (Aspirational districts) जैसे क्षेत्र जहाँ बड़ी संख्या में आर्थिक, सामाजिक या जातिगत बाधाओं का सामना करने वाले छात्र पाए जाते हैं, उन्हें 'विशेष शैक्षिक क्षेत्र' (Special Educational Zones) के रूप में नामित किया जाएगा। देश में क्षमता निर्माण हेतु केंद्र सभी लड़कियों और ट्रांसजेंडर छात्रों को समान गुणवत्ता प्रदान करने की दिशा में एक 'जेंडर इंक्लूजन फंड' (Gender Inclusion Fund) की स्थापना करेगा। गौरतलब है कि 8 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा हेतु एक राष्ट्रीय पाठयचर्या और शैक्षणिक ढाँचे का निर्माण एनसीआरटीई द्वारा किया जाएगा।

वित्तीय सहायता

एससी, एसटी, ओबीसी और अन्य सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूहों से संबंधित मेधावी छात्रों को प्रोत्साहन के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान की जाएगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986

इस नीति का उद्देश्य असमानताओं को दूर करने विशेष रूप से भारतीय महिलाओं, अनुसूचित जनजातियों और अनुसूचित जाति समुदायों के लिए शैक्षिक अवसर की बराबरी करने पर विशेष जोर देना था। इस नीति ने प्राथमिक स्कूलों को बेहतर बनाने के लिए 'ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड' लॉन्च किया। इस नीति ने इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के साथ ओपन यूनिवर्सिटी प्रणाली का विस्तार किया। ग्रामीण भारत में जमीनीस्तर पर आर्थिक और सामाजिक विकास को बढ़ावा देने के लिये महात्मा गाँधी के दर्शन पर आधारित 'ग्रामीण विश्वविद्यालय' मॉडल के निर्माण के लिए नीति का आह्वान किया गया।

पूर्ववर्ती शिक्षा नीति में परिवर्तन की आवश्यकता क्यों?

बदलते वैश्विक परिदृश्य में ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए मौजूदा शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता थी। शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने, नवाचार और अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए नई शिक्षा नीति की आवश्यकता थी। भारतीय शिक्षण व्यवस्था की वैश्विक स्तर पर पहुँच सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा के वैश्विक मानकों को अपनाने के लिए शिक्षा नीति में परिवर्तन की आवश्यकता थी।

नई शिक्षा नीति से संबंधित चुनौतियाँ

राज्यों का सहयोग : शिक्षा एक समवर्ती विषय होने के कारण अधिकांश राज्यों के अपने स्कूल बोर्ड हैं इसलिए इस फैसले के वास्तविक कार्यान्वयन हेतु राज्य सरकारों को सामने आना होगा। साथ ही शीर्ष नियंत्रण संगठन के तौर पर एक राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा नियामक परिषद् को लाने संबंधी विचार का राज्यों द्वारा विरोध हो सकता है।

महँगी शिक्षा : नई शिक्षा नीति में विदेशी विश्वविद्यालयों में प्रवेश का मार्गप्रशस्त किया गया है। विभिन्न शिक्षाविदों का मानना है कि विदेशी विश्वविद्यालयों में प्रवेश से भारतीय शिक्षण व्यवस्था के महंगी होने की आशंका है। इसके फलस्वरूप निम्न वर्ग के छात्रों के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।

शिक्षा का संस्कृतिकरण : दक्षिण भारतीय राज्यों का यह आरोप है कि 'त्रि–भाषा' सूत्र से सरकार शिक्षा का संस्कृतिकरण करने का प्रयास कर रही है।

फंडिग संबंधी जाँच का अपर्याप्त होना : कुछ राज्यों में अभी भी शुल्क संबंधी विनियमन मौजूद है, लेकिन ये नियामक प्रक्रियाएँ असीमित दान के रूप में मुनाफाखोरी पर अंकुश लगाने में असमर्थ है।

वित्तपोषण : वित्तपोषण का सुनिश्चित होना इस बात पर निर्भर करेगा कि शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय के रूप में जीडीपी के प्रस्तावित 6 खर्च करने की इच्छाशक्ति कितनी सशक्त है।

मानव संसाधन का अभाव : वर्तमान में प्रारंभिक शिक्षा के क्षेत्र में कुशल शिक्षकों का अभाव है, ऐसे में राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के तहत प्रारंभिक शिक्षा हेतु की गई व्यवस्था के क्रियान्वयन में व्यावहारिक समस्याएँ भी हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति की सबसे प्रमुख बात जहाँ यह प्राथमिक शिक्षा के सुदृढ़ीकरण पर बल देती है वहीं उच्चतर अध्ययन अर्थ शोध कार्यों पर भी बल देती है। देश में प्रथम बार राष्ट्रीय शोध आयोग प्रस्तावित किया गया है जो कि सम्पूर्ण भारत गुणवत्तापूर्ण शोध कार्यों के प्रारम्भ करना व बढ़ावा देने का होगा। अलग से शोध संस्थान, शोध प्रेरक विश्वविद्यालयों का गठन व निर्माण के प्रावधान करने का लक्ष्य रखा गया है जिससे देश के आने वाले समय की जरूरतों को पूरा किया जा सकेगा।

यह सही कहा गया है कि किसी देश को बदलना है तो वहाँ के शिक्षा तन्त्र को बदल दो जैसा कि अंग्रेजों ने किया था उसी अनुरूप यह नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 यदि सम्पूर्ण देश में इसकी मूल भावना के साथ लागू हो गई तो आने वाले 20–25 वर्षों में इसका असर दिखाई देने लगेगा और जिस भारत की कल्पना हम अपने युवाओं से करते हैं वह वास्तविक रूप से स्वावलम्बी और सशक्त भारत के निर्माण में शिक्षा नीति का निर्माण मील का पत्थर होगा। यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 बहुआयामी, देशभक्त व आत्मनिर्भर भारत बनाने में निश्चित ही कारगर होगी यदि इसे इसकी मूल भावना के साथ हम देश में लागू करने में सम्भव हो सकें, निश्चय ही ईश्वर का आशीर्वाद व केन्द्र और राज्य सरकारों तथा शिक्षाविदों की दृढ़ इच्छा शक्ति इसमें मदद करेगी। ❑